नये सवाल, नये निदान

यैस ओशो

फरवरी 2022 वर्ष 13 अंक 5

अपने रोजमर्रा के जीवन में लायें

ध्यान का स्वाद

ओशो द्वारा सुझाये छोटे-छोटे प्रयोगों के साथ

हम कोई पंथ और पक्ष खड़ा नहीं करना चाहते कि मैं आपको सारे पंथों से मुक्त कर लूं और एक पंथ में खड़ा कर दूं। वह तो मैं आपका दुश्मन हो जाऊंगा। वह तो वही बात हो गई। इससे क्या फर्क पड़ता है कि पंथ किसका है और विश्वास किसके हैं। मेरी बातों का इससे ज्यादा कोई भी मूल्य नहीं है कि जो कांटे लगे हैं आपको वे निकाल दिए जाएं दूसरे कांटे से, लेकिन दूसरा कांटा उतना ही कांटा है जितना पहला लगा हुआ है। दूसरा कांटा रख लेने की जरूरत नहीं।

इसलिए मेरी बातों को कहीं रख नहीं लेना है। यह सब बातचीत है। अगर पहले से घुसी हुई बातचीत को निकाल देने की सामर्थ्य हो जाए तो ठीक, असली बात साधना है। लाख विचार उतने काम के नहीं हैं जितना एक छोटा सा अणुमात्र साधना का काम का है। लाख चिंतन अर्थ का नहीं है जितना प्यास से भर कर सत्य और परमात्मा की ओर आंखें उठा कर थोड़ी देर चुप हो जाने का मूल्य है।

With Gratitude
Friends from Lucknow

कोई कितना भी कमजोर हो, एक कदम उठाने की सामर्थ्य सबमें है। हजार मील चलने की न हो, हिमालय चढ़ने की न हो, लेकिन एक कदम उठा लेने की सामर्थ्य सबके भीतर है। अगर हम थोड़ा सा साहस जुटाएं, तो एक कदम निश्चित ही उठा सकते हैं।

दूसरी बात आपसे यह कहूं कि जो एक कदम उठा सकता है, वह हिमालय चढ़ सकता है; जो एक कदम उठा सकता है, वह हजारों मील चल सकता है। क्योंकि इस जगत में एक कदम से ज्यादा चलने का कोई सवाल नहीं है। एक कदम से ज्यादा कभी कोई चलता भी नहीं। हमेशा एक कदम चला जाता है।

Thank You, Beloved Osho

Swami Bodhi Vimal, Gurgaon

अनुक्रम

यैस ओशो
फरवरी 2022

कवर स्टोरी

पृष्ठ 12 से 29 :
ध्यान का स्वाद
ओशो द्वारा सुझाये छोटे-छोटे प्रयोगों के साथ

अन्य स्तंभ

5. संपादकीय
8. बोधिधर्म और चीन के सम्राट का अहंकार
10. रोज़मर्रा के प्रश्न व ओशो के समयातीत उत्तर
12. ध्यान विज्ञान
30. नये संकेत
32. आलेख
33. कुछ पुस्तकें पढ़ने जैसी
40. हमारी प्यारी धरती
42. ओशो मल्टीवर्सिटी
48. स्वास्थ्य
54. दर्शन के दस्तावेज
60. लगन महुरत झूठ सब

प्रकाशक व संपादक : संजय भारती
प्रकाशन का स्थान : सेलिब्रेंट्स, बी 10, सनशाइन टॉवर्स, पॉपुलर हाइट्स रोड,
कोरेगांव पार्क, पुणे 411 001
ईमेल : yesosho.info@gmail.com

कार्यकारी संपादक : संतोष भारती **फीचर सहयोग :** अनिल सरस्वती, आत्मो मनीष
सृजन सहयोग : बॉबी **फोटोग्राफी :** आत्मो मनीष, सुपर्णी **वितरण व्यवस्था :** देव साम्या

First Publication Copyright © 1953 OSHO International Foundation.
Copyright © All revisions 1953-2022 OSHO International Foundation. All rights reserved.

यैस ओशो ब्यूरो

मुंबई : 9819012780
जयपुर : 8619123992
7230043043
अहमदाबाद : 9426085393
अहमदाबाद : 9824051299
पटना : 7004818462
भीलवाड़ा : 9413057057
भीलवाड़ा : 9694935601
घरौंदा : 9416335032
करनाल : 9315669592
ग्वालियर : 9926646118
रोहतक : 9416945839
राजकोट : 9427254276
काठमांडू : 00977-16910889
दामन : 00977-9852677502
भोपाल : 9300688065
उलहासनगर : 9324688702
बनारस : 7275880012
नागपुर : 9370131208
उज्जैन : 9826204097,
उज्जैन : 9755929448
रुड़की : 09837378070
लुधियाना : 9988176442
चंडीगढ़ : 9417643701
अकोला : 9422164323
बरेली : 9411658172
जालंधर : 9815657071
ऋषिकेश : 8755902084
ऋषिकेश : 9761716300
अजमेर : 9828520864
डूंगरपुर : 9414724751
अलीगढ़ : 9927028096
9897759999
तलवाड़ा : 9417175391
उदयपुर : 9352516130
हैदराबाद : 9392472766
इगतपुरी : 9226283081
रायपुर : 9425503949
फिरोजाबाद : 9319791673
कारंजा : 9404094398
बिलासपुर : 9827177272
छिंदवाडा : 9827449131
पोरबंदर : 9979657304
मानवत : 9422207953
कुरुक्षेत्र : 9253447536
आगरा : 9837120625
नासिक : 9822655045
आमला : 9981284108
बांदिकुई : 9610088990
सोलन : 9736707298
सोलन : 8894925396
जबलपुर : 9009530956
गया : 9308212518
अलवर : 9214080532
नासिक : 9403162888
पटियाला : 9876255101
कोटा : 9414862621
गाज़ियाबाद : 8800139880
अमृतसर : 9417071600
अमरावती : 9970870757
जालौर : 9460016065
सतना : 9425376614
तिरुचरापल्ली : 9443424065
सहरसा : 8677992338
चांपा : 9575518984
पाली : 9529788784
कुशीनगर : 9838383505
धामपुर : 9412854360
लखनऊ : 9919761119
लखनऊ : 7905477107
रक्सौल : 9097163334
सारनी : 8871129998
बंगलूरू : 8088008808
दिल्ली : 8595390001
गढ़शंकर : 9781992943
आसनसोल : 9332193365
भटिंडा : 9780076800
बोकारो : 9708594977
रांची : 9234778347

संजय भारती

हाथ कंगन को आरसी क्या!

अविवेकपूर्ण, असंयत, अमर्यादित व आधारहीन बातों को अंग्रेजी में लूज़ टॉक कहते हैं, जिसका सीधा-सीधा अनुवाद हुआ—ढीली या लचर बात। यह टर्म बात के लिए कम और बोलने वाले के व्यक्तित्व को दर्शाने के लिए ज्यादा गढ़ी गई थी—ऐसा व्यक्ति, जिसकी जुबान को लूज़ मोशन यानि दस्त लगे हुए हों। प्रारंभ में लूज़ टॉक के दायरे में डींग हांकने से लेकर किसीके लिए विद्वेषपूर्ण मंशा से कही गई सभी निराधार बातें आती थीं—किसी गोपनीय बात को या किसीके द्वारा भरोसे में बताई गई निजी बात को पेट में न रख पाना, जो अभी हुआ ही नहीं है उसे ऐसे बताना कि कब का हो चुका, बिना अनुभव और बिना साक्ष्य के किसी बात को एक शत-प्रतिशत जानकार की हैसियत में हठधर्मिता के साथ बोलना, आधारहीन साक्ष्य रखकर अपनी बातों से दो व्यक्तियों या समुदायों के बीच कटुता पैदा कर देना, मनगढ़ंत तर्कों के आधार पर अपनी मान्यताओं को सही व दूसरे को गलत सिद्ध करने की कोशिश करना...।

निजी जीवन में हम सभी थोड़ी-बहुत लूज़ टॉक करते हैं—भावनात्मक रूप से दस्त-विसर्जन करके हलके होने के लिए। ऐसा करने से चूंकि हमारे व्यक्तित्व में जो लचरता आती है उससे हम बेखबर रहते हैं, इसलिए हमें इसका कोई नुकसान दिखाई नहीं देता—हां, कभी-कभार संबंधों में थोड़ी खटास आ जाती है या कोई छोटी-मोटी आर्थिक क्षति हो जाती है। कभी ही ऐसा होता है कि लूज़ टॉक के दुष्परिणामों की क्षतिपूर्ति न की जा सके—लेकिन वह संभावना हमेशा रहती है। अब दस्त साधारण-सी बीमारी ही तो हैं, लेकिन फिर भी हर साल विश्व में तकरीबन पांच लाख लोग उससे मर जाते हैं।

मगर सार्वजनिक तल पर लूज़ टॉक हमेशा ही घातक होती है—कभी तो उसके दुष्परिणाम सामने साफ दिखते हैं, और कभी दिखते नहीं लेकिन मानसिकताओं में एक धीमा विष छोड़ जाते हैं। इसीलिए सार्वजनिक जीवन में खड़े व्यक्तित्वों से अपेक्षा की जाती है कि उनके स्वर संयत हों, उनकी बोली मर्यादित हो। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजी में एक कहावत गढ़ी गई जो आज बहुत प्रचलित है—लूज़ टॉक कैन कॉस्ट लाइव्स। लूज़ टॉक से जानें जा सकती हैं। यह एक चेतावनी थी—राजनेताओं, सैन्य अधिकारियों, पत्रकारों व लेखकों को जुबान की फिसलन से बचने के लिए।

आज जिस साइबर युग में हम जी रहे हैं, उसमें निजी लूज़ टॉक जैसा कुछ नहीं रहा। अब हम सभी अपने मंतव्य व कथन सोशल मीडिया पर सार्वजनिक करते हैं। सो लूज़ टॉक वाली चेतावनी अब हम सबके लिए है, हमें बहुत विवेक से अपने कथनों के लिए उत्तरदायी होने की जरूरत है—क्योंकि हमें पता नहीं कि हमारा एक छोटा-सा अविवेकपूर्ण वक्तव्य भविष्य के लिए कौनसे विषपूर्ण बीज बो जाए। और यह भी हमारा उत्तरदायित्व है कि जिन साक्ष्यों को हम जानते हैं, जो हमारे अनुभव में हैं, उनके साथ किसी को छेड़छाड़ करते देखें तो सामने वाले को टोकें और उसे ठीक करें—क्योंकि संभावित रूप से किसी भी तल पर घातक हो सकने वाले बीजों को यूं ही पड़ा रहने देना भी उस दुष्परिणाम की प्रक्रिया में हिस्सा लेना ही है।

ओशो के साथ तो हमने देखा ही है न, कि किस तरह ऐसी लूज़ टॉक पर भी अपने लोगों की पिटाई उन्होंने अपने सार्वजनिक प्रवचनों में की है जो उन लोगों ने सिर्फ एक या दो लोगों के सामने की और उन्हें उसका पता चला—या कभी तो वह बात सिर्फ उनके ही सामने की गई, और उनके अतिरिक्त सुनने वाला वहां कोई भी न था। निजी स्पेस में भी की गई बातों की सार्वजनिक धुलाई करके, ओशो हमारे चित्तों में पड़े हुए वे बीज भी नष्ट कर रहे होते हैं जिन्होंने अभी आकार भी नहीं लिया।

ओशो के कार्य को लेकर पिछले एक लंबे अरसे से सोशल मीडिया के सार्वजनिक पटल पर जो लिखा-कहा जा रहा है, उसमें से अधिकांश लूज़ टॉक के दायरे में ही आने लगा है। ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन की कार्य-शैली क्या है और क्या हो सकती है, यह तो सबका अपना-अपना मंतव्य हुआ—जो सबका अधिकार है। मंतव्यों के मंथन से ही सदा कोई भी चीज गतिशील रहती है। लेकिन अपने मंतव्य को एकमात्र सत्य सिद्ध करने के लिए तथ्यों को ही विकृत करने लगें तो वह घातक हो जाता है।

अभी पिछले एक-दो साल से दो घरेलू चैनल यूट्यूब पर खुले हुए हैं जो ओशो के कार्य पर जजमेंट देने में जुटे हैं। दोनो चैनलों के एंकर स्वयं कहते हैं कि ओशो से उनका परिचय एक-डेढ़ साल से अधिक का नहीं है—न तो तथ्यों के प्रति उनका कोई स्वानुभव है और न ही उनके पास कोई गहन शोध है। उन्हें बस कुछ मंतव्य थमाए गए हैं, जिनकी चौखट में वे अपनी सारी डिबेट्स को फिट करते हैं और अपनी जजमेंट सुनाते हैं। कोई आठ-दस पंडितजन हैं जो रोटेट हो-होकर इन चैनलों पर आते रहते हैं और एक जैसा रिकॉर्ड बार-बार दोहराते रहते हैं। ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन की गतिविधियों को गलत सिद्ध करने के लिए ही नहीं बल्कि उसके सदस्यों को जघन्य अपराधों का अभियुक्त करार देने की आतुरता में ये पंडितजन अब तो ऐसी बातें बोलने लगे हैं कि जो ओशो को जानता न हो वह यदि उन्हें सुने तो ओशो के प्रति भी

उसका मत एक बहुत कमजोर, भीरु और वास्तविकता से अनभिज्ञ व्यक्ति के रूप में बनेगा। ओशो को ही ऐसा सिद्ध करके ये ओशो के कार्य को बचाने में लगे हैं!

मुझे किसी ने एक क्लिप भेजी जिसमें एक पंडितजी चैनल पर बैठकर कह रहे थे कि अमृतो ने ओशो को ड्रग्स की आदत लगवा दी थी, जिससे उनकी टाइम की सेंस खतम हो गई थी।

अपने आरोपों का प्रमाण उन्होंने इस तथ्य के साथ दिया कि अंत के प्रवचनों में ओशो चार-चार घंटे बोलने लगे थे। ओशो के चार-चार घंटे बोलने का तात्पर्य उन्होंने यह लगाया कि ओशो को होश ही नहीं था कि वे कितना बोल रहे हैं। यह तो शुकर है कि उन्होंने यह नहीं कहा कि उन्हें यही होश नहीं था कि वे क्या बोल रहे हैं—क्योंकि इन प्रवचनों में तलवार जैसी तीखी धार भी है और वासंती फूलों की खुशबू भी।

होश, स्थिरता व अपनी शारीरिक गतिविधियों पर पूरे नियंत्रण को परखने के लिए मैं इन पंडितजी को आग्रह करूंगा कि एक प्रयोग करें : तीन फीट ऊंचे एक पोडियम पर इतनी बड़ी कुर्सी रख दें कि उसके दाईं व बाईं ओर सिर्फ डेढ़-डेढ़ फीट की जगह बचे व आगे सिर्फ एक फुट की। फिर पोडियम पर नीचे देखने की बजाय सामने हजारों लोगों की आंखों में देखते हुए, बिना डगमगाए, कुर्सी के दाएं से बाएं पूरा अर्द्धवृत्त चलें। ओशो रोज यह करते थे, और वह भी अकसर तेज संगीत पर नाचते हुए।

फिर पंडितजी चार घंटा बिना पांव की उंगली तक हिलाए, धाराप्रवाह बोलकर दिखाएं—पानी की एक भी घूंट पिए बिना, बिना गला खंखारे, और अंत तक आवाज भी न बैठे। उसके बाद फिर उस पोडियम का वैसे ही नाचते हुए चक्कर लगाएं। अच्छे से अच्छे हृष्ट-पुष्ट नौजवान ऐसा करने में चक्कर खाकर गिर पड़ें, और ओशो यह रोज करते थे—मुस्कुराहटें बिखेरते हुए।

वे अपने होश को आप पर पूरा उलीच रहे हैं और आप कहते हैं कि उन्हें होश नहीं था? और वे इतने कमजोर कि कोई भी उन्हें कोई आदत लगवा दे?

यदि उन्हें समय का ही होश नहीं रहा था, तो वह क्या था जब ईवनिंग मीटिंग के समय वे आंखें बंद करके ध्यान निर्देशित करते थे तो ठीक दस मिनट में उठ जाते थे—वे दस मिनट तो कभी ग्यारह भी नहीं हुए।

ओशो अगर चार-चार घंटे बोल रहे थे, वह भी ऐसे कि जैसे वे किसी अरजेंसी में हों—तो उसका कारण यह था कि उन्हें पता था कि वे बोलना बंद करने वाले हैं, और उन्हें अपना सबकुछ उलीच देना है। इस दृष्टि से देखें तो यह कितना काव्यात्मक तथ्य है जो पोर-पोर में मधु उतार दे। लेकिन आप और आपके मित्र यह नहीं देखेंगे, क्योंकि आपको तो यह सिद्ध करना है कि ओशो की हत्या का षडयंत्र रचा जा रहा था, और व्यक्तित्वों को आर-पार पढ़ सकने वाले ओशो इस सबसे अनभिज्ञ थे।

इन्हीं चैनलों के एक और दुलारे हैं। वह बड़े होशियार पंडित हैं। पढ़-पढ़कर ओशो से संबंधित तथ्य तो लगता है बहुत जमा कर रखे हैं, लेकिन फिर उन्हें ओखली में कूट-कूटकर ऐसे आकार देते हैं कि वे उनकी जड़ व सांप्रदायिक मान्यताओं में फिट बैठ सकें। एक ही फिक्स्ड निबंध को घुमा-फिराकर फेसबुक पर लंबा-लंबा लिखते रहते हैं। आजकल एक शृंखला चलाई हुई कि ओशो द्वारा अपने पूर्व नाव व संबोधन—भगवान श्री रजनीश—का त्याग व उसकी जगह ओशो का संबोधन स्वीकार करना एक बहुत बड़ा षडयंत्र है, उनका व्यावसायिक दोहन करने के लिए।

भलेमानस को इतना तो पता होना चाहिए कि भगवान शब्द का जितना दोहन हो सकता है, पृथ्वी पर शायद ही कोई ऐसा शब्द हो जिसका हो सके। पिछले ढाई हजार साल से आज तक इसी नाम पर रोज मनों सोना चढ़ता आया है—भले ही देश में अकाल हो कि महामारी।

कभी यह पंडितजी कहते थे कि ओशो की देह में रहते उन्हें कभी ओशो कहा ही नहीं गया। किसी प्रवचन में उन्हें ओशो कहकर संबोधित किया गया हो, यह कभी वह मानने को ही तैयार नहीं थे। कूट-कूटकर तैयार किए गए अपने नायाब तथ्यों के आधार पर सिद्ध करते रहते थे कि ओशो शब्द का प्रयोग व्यावसायियों ने उनके मौन में चले जाने के बाद शुरू किया, और ओशो को पता तक नहीं चला—जबकि ईवनिंग मीटिंग में उनके सामने रोज तीन बार ओशो-ओशो-ओशो कहा जाता था। इनकी मानसिकता में तो 'बेचारे' भोले-भाले ओशो को पता ही नहीं चलता होगा कि संन्यासी क्या कह रहे हैं!

फिर पंडितजी ने कुछ अरसा पहले लिखा गया यैस ओशो का वह संपादकीय पढ़ा होगा कि कैसे ओशो ने सार्वजनिक प्रवचन में भगवान संबोधन का त्याग किया, दो-तीन संबोधन बदले, फिर ओशो संबोधन को स्वीकार करके ओशो रजनीश हो गए। झेन मेनिफेस्टो प्रवचनमाला के दूसरे से अंतिम प्रवचन तक मनीषा ने उन्हें ओशो कहकर ही संबोधित किया और ओशो ने उसके प्रश्न को पढ़ते हुए भी ओशो ही पढ़ा। इस प्रवचनमाला के अंतिम प्रवचन के बाद ओशो फिर कभी नहीं बोले, और तीन महीने बाद बुद्धा हॉल में वापस आना शुरू

किया—ईवनिंग मीटिंग के लिए। इन तीन महीनों में वे अपना नाम रजनीश भी छोड़ चुके थे, और अब केवल ओशो थे।

यह पढ़ लेने के बाद पंडितजी क्या करते? जो तथ्य इतने सार्वजनिक हैं कि उन्हें कोई कहीं भी देख ले, उन्हें तोड़ना-मरोड़ना तो खाली कारतूस चलाने जैसा हो जाएगा। अब कहने लगे हैं कि चूंकि भगवान श्री रजनीश नाम बदनाम हो चुका था और उस नाम से व्यापार करना कठिन था, सो षडयंत्रकारियों (यानि उनके निकटवर्ती लोगों) ने उन पर दबावा डाला कि वे उसे त्यागकर ओशो हो जाएं।

रहस्यदर्शी जगत की एक अपूर्व घटना को व्यापार और षडयंत्र के चश्मे से देखना...धत तेरे की!

और ओशो यदि दबाव में आकर कुछ करते हैं तो यह पंडितजी उनके व्यक्तित्व का कौनसा चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं? एक असहाय, भीरु और बिना रीढ़ के व्यक्तित्व का? ऐसे दबाव जिनमें आकर व्यक्ति अपना मूल स्वरूप ही बदलने को तैयार हो जाए, गिनकर होते ही चार हैं—बदनामी का डर, जान जाने का डर, संपत्ति जाने का डर और वह संबंध टूट जाने का डर जिस पर व्यक्ति बुरी तरह आश्रित हो।

ओशो का पूरा जीवन क्या इनमें से किसी भी भय की कहानी कहता है? पूरी मनुष्यता को इन भयों से मुक्त करने के लिए उनका पूरा जीवन-दर्शन है।

पंडितजी ने प्रश्नों की एक फेहरिस्त तैयार की है, जो उन्हें लगता है कि लोगों की चेतना को झकझोर कर रख देंगे और वे भी यही प्रश्न पूछने को बाध्य हो जाएंगे। लेकिन वे प्रश्न हैं लचर ही।

वह पूछते हैं—क्या कोई ऐसी रिकॉर्डिंग उपलब्ध है जिसमें ओशो ने कहा हो कि आज से मैं ओशो कहलाउंगा? तो पंडितजी, पहले आप ही बताइए कि क्या ऐसी कोई रिकॉर्डिंग उपलब्ध है जिसमें उन्होंने कहा हो कि आज से वे भगवान कहलाएंगे? उस समय ओशो को जब भगवान कहा जाने लगा था, इस विषय में तब का सबसे पहला प्रवचन तो यही मिलता है जिसमें एक प्रश्नकर्ता उन्हें कुछ लोगों द्वारा भगवान कहकर बुलाए जाने के प्रति आपत्ति जताता है और ओशो उसका उत्तर देते हैं। भगवान का संबोधन भी उन्होंने शिष्यों से ही स्वीकार किया, ओशो का संबोधन भी—भगवान का परित्याग करने के बाद।

यह रिकॉर्डिंग-रिकॉर्डिंग पर बहुत लोगों का रिकॉर्ड अटका रहता है। कई पूछते हैं कि ओशो ने देह त्याग से पहले जो कहा वह रिकॉर्ड क्यों नहीं किया गया—बिना रिकॉर्डिंग के कैसे मान लें कि यह उन्होंने ही कहा।

अब यह बताइए कि ओशो की कौनसी रिकॉर्डिंग उपलब्ध है कि कुंडलिनी ध्यान में, नटराज ध्यान में, नादब्रह्म में, गौरीशंकर में कितने और कौन-कौन से चरण हैं? उन्होंने इन विधियों के कुछ अवयवों की चर्चा जरूर की है, लेकिन सार्वजनिक रूप से इनका पूरा प्रारूप तो कभी बताया ही नहीं।

न ही ऐसी कोई रिकॉर्डिंग है कि वे ध्यान किस समय किए जाने चाहिए, और न ऐसी कोई रिकॉर्डिंग कि उनके संगीत को बदला नहीं जाना चाहिए। एक स्थान कैसे चलेगा, इससे अधिक महत्वपूर्ण विषय है कि ध्यान की विधियों का प्रारूप क्या होगा—उसकी रिकॉर्डिंग कभी मांगी? वह कैसे मान लिया कि ओशो ने ही कहा है?

कोई रिकॉर्डिंग है, जिसमें ओशो व्हाइट और मैरून रोब्स के उपयोग के विषय में बता रहे हैं? यह संदेश भी उसी शिष्य ने आकर सुनाया था जिसने आई लीव यू माय ड्रीम वाला संदेश सुनाया था। फिर रोब्स वाली बात कैसे मान ली? बस कड़वा-कड़वा थू, मीठा-मीठा गप्प। कड़वा यानि जो अपने मंतव्यों के विपरीत जाये...।

ओशो की अलबत्ता कई ऐसी सार्वजनिक रिकॉर्डिंग उपलब्ध हैं जिनमें वे कहते हैं कि वे हमें संन्यास के सब बाह्य प्रतीकों से मुक्त कर चुके हैं, फिर भी चैनलों पर तो ओशो की कही बात को धत्ता बताते हुए आप मालाएं लटका-लटकार बैठते हैं। वाह, ओशो के कार्य के ध्वजाधरों!

वैसे तो कितने ही ठोस प्रमाण सामने रख दो, कुछ है जो टेढ़ी की टेढ़ी ही रहती है—लेकिन फिर भी पंडितजी के प्रश्न का उत्तर है कि ऐसी कोई रिकॉर्डिंग तो नहीं जिसमें ओशो स्वयं को ओशो घोषित करते हों, मगर उनका एक हस्तलिखित दस्तावेज है जिसमें वे स्वयं को ओशो कहते हैं।

सितंबर 1989 में एक रात के लिए जब जापान से एक संबुद्ध झेन संत, तामो सान, पूना आई थीं तो ओशो ने ईवनिंग मीटिंग के समय उन पर पुष्प वर्षा की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक झेन मेनिफेस्टो उन्हें भेंट दी थी, जिस पर अपने हस्ताक्षरों के ऊपर उन्होंने उनके लिए एक संदेश लिखा था। उस संदेश का हिंदी अनुवाद है :

'मैं, ओशो, स्वयं एक बुद्ध, आपके बुद्धत्व की प्रतिभिज्ञा लेता हूं और उसमें आनंदित हूं। मैं जानता हूं, और आप भी जानती होंगी कि एक कदम और बचा है—बुद्धत्व के पार जाने का, और नाकुछ हो जाने का।'

ओशो द्वारा उस नाम से मुक्त हो जाना जो जन्म से उनके साथ था, उनके द्वारा वह अंतिम कदम लिए जा चुकने की घोषणा है।

(शेष पृष्ठ 47 पर)

बोधिधर्म और चीन के सम्राट का अहंकार

बोधिधर्म चीन पहुंचा। उसके पहुंचने के पहले उसकी ख्याति चीन पहुंच गई। वह बहुत अदभुत व्यक्ति रहा होगा। चीन का सम्राट उसे लेने चीन की सीमा पर आया। उसने स्वागत किया बोधिधर्म का और एकांत में बोधिधर्म से कहाः भिक्षु, बड़ी प्रशंसा मैंने सुनी है तुम्हारी और बड़े दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूं कि तुम कब आ जाओ। मेरे जीवन का एक दुख है, उसे मैं मिटाना चाहता हूं। अहंकार मुझे पीड़ा दे रहा है। और सैकड़ों-सैकड़ों धर्मोपदेशकों ने मुझे समझाया है कि अहंकार छोड़ो तो दुख के बाहर हो जाओगे। लेकिन मैं अहंकार कैसे छोड़ूं? मैंने सब उपाय किए। मैंने उपवास किए, मैंने रूखे-सूखे भोजन किए, मैं गद्दियां छोड़ कर जमीन पर सोया, मैंने शरीर को कृशकाय कर लिया, मैं भूखों मरा, मैंने सब तरह के भोग बंद किए, मैंने सब तरह के अच्छे वस्त्र पहनने बंद कर दिए, सर्दियां और गर्मियां मैंने लंगोटियों पर गुजारीं। लेकिन भीतर मैं पाता हूं कि अहंकार मरता नहीं, वह मौजूद है। धन भी मैंने देख लिया, राज्य भी मैंने देख लिया, त्याग भी मैंने देख लिया, मैं बड़ा परेशान हूं, यह अहंकार तो जाता नहीं, वह तो मौजूद है, वह कहीं छोड़ता नहीं पीछा। अब मैं क्या करूं?

उस बोधिधर्म ने कहाः मेरे मित्र, तुमने जो भी किया, वह व्यर्थ है, क्योंकि तुमने सबसे बुनियादी बात नहीं की। वह बुनियादी बात कल सुबह हम करेंगे, तुम चार बजे आ जाओ, मैं तुम्हारे अहंकार को खत्म ही कर दूंगा।

वह राजा बहुत हैरान हुआ! इतनी आसान है क्या बात, जिसे जीवन भर उसने खत्म करने की कोशिश की है, यह कहता है व्यक्ति कि चार बजे रात आ जाओ, खत्म कर देंगे! खैर देखें। वह राजा उतरने लगा उस मंदिर की सीढ़ियां जहां बोधिधर्म ठहरा था, वह आधी सीढ़ियों पर होगा कि बोधिधर्म ने कहा कि सुनो, एक बात खयाल रखना, जब आओ तो अकेले मत आ जाना, अहंकार को साथ ले आना।

राजा थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि उसने कहा कि यह क्या बात हुई कि अहंकार को साथ ले आना! बोधिधर्म ने कहाः इसलिए कहता हूं कि तुम अगर अकेले आ गए, तो मैं हत्या किसकी करूंगा? साथ ले आना अहंकार को, तो उसको खत्म कर दूंगा, एकबारगी में मामला निपट जाएगा, बात खत्म हो जाएगी।

चार बजे वह आया। आते ही से बोधिधर्म ने पूछाः ले आए अहंकार?

उसने कहाः आप भी कैसी बातें करते हैं! अहंकार कोई वस्तु तो है नहीं कि मैं ले आता।

बोधिधर्म ने कहाः चलो एक बात तय हो गई कि अहंकार कोई वस्तु नहीं है। फिर क्या है अहंकार?

उस राजा ने कहाः अहंकार तो एक भाव है, एक चित्त की दशा है।

उसने कहाः चलो दूसरी बात मान लेता हूं कि अहंकार भाव है। अब आंख बंद करके बैठ जाओ और खोजो कि वह भाव कहां है? और तुम्हें मिल जाए तो मुझे बता देना, वहीं मैं उसकी हत्या कर दूंगा।

उस अंधेरी रात में, चार बजे सुबह, वह राजा आंख बंद करके बैठ गया और खोजने लगा अपने भीतर कि अहंकार कहां है? और बोधिधर्म सामने डंडा लिए बैठा हुआ था, वह डंडा हमेशा अपने हाथ में रखता था। और उसने कहाः तुम्हें मिल जाए, तो मुझे बस बता भर देना कि पकड़ लिया, मैं उसकी हत्या कर दूंगा। वह सामने बैठा है और राजा को बीच-बीच में डंडे से धक्के देते जाता है कि देखो, खयाल से खोजो, कोई जगह चूक न जाए, कोई कोना बिना जाना न रह जाए, सारे मन को खोज डालो कि कहां है अहंकार और पकड़ लो उसे वहां कि यहां है, यह है। और तुम जैसे ही कह सकोगे कि यह है, मैं उसकी हत्या कर दूंगा।

आधी घड़ी बीती, घड़ी बीती, वह जो राजा बैठा था, उसके चेहरे पर बड़ा तनाव, खोज रहा है। लेकिन धीरे-धीरे चेहरे का तनाव शिथिल होता गया, उसके चेहरे के स्नायु तंतु शिथिल होते गए, उसका चेहरा एकदम शांत होता गया। घंटा बीता, दो घंटा बीता, वह खोज रहा है। लेकिन अब, अब उसकी आंखों के आस-पास कोई बड़ी शांति इकट्ठी होने लगी। उसके ओंठों के आस-पास कोई मुस्कुराहट घनी होने लगी। वह खोज रहा है, और सुबह होने लगी और सूरज निकलने लगा और सूरज का प्रकाश आने लगा और उसके चेहरे पर सूरज की रोशनी पड़ने लगी। वह कोई दूसरा आदमी हो गया। और बोधिधर्म ने उसे हिलाया और कहाः मित्र, कब तक खोजते रहोगे?

उसने आंख खोली, उसने बोधिधर्म के पैर पड़े और कहाः मैं जाता हूं। जिसकी हत्या के लिए मैं आया था, वह है ही नहीं। मैंने आज तक खोजा नहीं, इसलिए वह था; आज मैंने खोजा, तो पाया कि वह नहीं है।

बोधिधर्म ने कहाः वैसा ही है यह, जैसे किसी घर में अंधेरा हो और किसी आदमी को हम कहें कि जाओ दीया ले जाओ और खोजो कि कहां है? दीया लेकर वह भीतर जाए, तो अंधेरा नहीं मिलेगा। अंधेरा होता है, क्योंकि दीया नहीं होता। और दीया लेकर भीतर कोई जाता है, तो पाता है, अंधेरा नहीं है। ऐसे ही जब कोई सम्यकरूपेण मन के भीतर होशपूर्वक दीया लेकर जाता है—विचार का, विवेक का, प्रज्ञा का दीया लेकर खोजता है भीतर, तो पाता है, वहां कोई अहंकार नहीं है। जब तक नहीं जाता खोजने, तब तक अहंकार है। हमारी अनुपस्थिति अहंकार है, जैसे ही हम भीतर उपस्थित होते हैं खोजने को, वहां कोई अहंकार नहीं है।

अवेकंड माइंड के सामने, जागे हुए मन के सामने अहंकार को नहीं लाया जा सकता। तो सवाल क्या है? सवाल सीधा और साफ है। सवाल यह है कि हम किस भांति जाग जाएं और भीतर देख सकें। अगर हम भीतर जाग कर देख सकें तो वहां कोई ईगो, कोई अस्मिता, कोई अहंकार, कोई मैं वहां नहीं है। फिर वहां जो है वही परमात्मा है, फिर वहां जो है वही मोक्ष है, फिर वहां जो है वही निर्वाण है। फिर उसे कोई कोई नाम दे दे, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। वहां जो है, वही परम आनंद है, वही परम सत्य है।

अपने माहिं टटोल. प्रवचन 8

इस कॉलम के अंतर्गत आप अपने प्रश्न हमें भेज सकते हैं। ओशो के प्रवचनों में से उनके उत्तर ढूंढने का हमारा प्रयास रहेगा।

आलोचना में इतना रस क्यों?

प्रश्न : मुझे आलोचना या निंदा करने में बहुत मजा आता है। बात-बे-बात मैं हर किसी बात की आलोचना करने लगता हूं। कई बार मैं हैरान भी होता हूं कि ऐसी किसी बात की भी आलोचना कर दी जिसे मैं पूरी तरह से पसंद करता था या सहमत था।

रामनरेश तिवारी, उज्जैन

ओशोः लोगों की आलोचना करना तुम्हें अच्छा लगता है। दूसरों की आलोचना करते समय तुम अपने आपको उनसे बड़ा समझते हो। दूसरों के बारे में शिकायत करते समय तुम सोचते हो कि तुम उनसे बेहतर हो। यह एक बहुत बड़ा दंभ है। लगभग हर कोई व्यक्ति इस तरह करता है। कुछ लोग इसे जोर शोर से करते हैं, कुछ लोग इसे अपने आप में ही करते हैं, किंतु इसकी खुशी एक जैसी रहती है।

बहुत कम लोग ऐसे हैं जो आलोचना नहीं करते, जो शिकायत नहीं करते, वे ऐसे लोग होते हैं जिन्होंने अपना अहंकार छोड़ दिया होता है। फिर कोई सवाल ही नहीं है—तुम इस बात की भला चिंता क्यों करो? इसका तुमसे कोई लेना देना नहीं है।

इसलिए मैं अहंकार छोड़ने पर जोर देता हूं। अहंकार छोड़ने पर तुम्हें लगेगा कि पूरी दुनिया जो अहंकार के चारों ओर घिरी हुई है, पूरी तरह से दूर हो जाती है और तुम लोगों को एक नये प्रकाश में देखने लगते हो। शायद जिस व्यक्ति की तुमने आलोचना की थी उसी अवस्था में उसकी आलोचना के बजाय तुम उसके प्रति एक अगाध करुणा की अनुभूति करने लगते हो। एक गहरे प्रेम की अनुभूति होती है और उसकी सहायता करने की गहरी इच्छा जग जाती है। जिस व्यक्ति की जिस अवस्था में तुमने उसकी शिकायत की थी, उसी अवस्था में उसी व्यक्ति के प्रति तुम्हारी दृष्टि अब भिन्न हो जाती है, अब तुम चीजों को बिलकुल अलग तरह से देखने लगते हो। शायद तुम समझ जाओगे कि इस अवस्था में उसके स्थान पर तुम भी ऐसा ही व्यवहार करते, उसमें शिकायत करने के लिए कुछ भी नहीं है।

तुम्हारी दृष्टि अधिक मानवीय अधिक मैत्रीपूर्ण हो जाएगी। तुम्हारे मन में लोगों की एक गहरी स्वीकृति होगी जैसे कि वे हैं।

तुम उनके जीवन का एक छोटा अंश जानते हो, तुम उनके पूरे जीवन को नहीं जानते हो। और किसी पूर्ण व्यक्ति के बारे में एक छोटे अंश को देखते हुए निर्णय करना अच्छी बात नहीं है। और यह छोटा अंश पूरे संदर्भ में उपयुक्त और सही हो सकता है।

आलोचना करना बहुत सरल होता है। इसके लिए अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती।

बियांड एनलाइटनमेंट

माता-पिता के संबंध में एक प्रश्न

प्रश्न : मैं अपने माता-पिता को प्रेम भी करता हूं और उनका सम्मान भी करता हूं, लेकिन मेरे जीवन में उनकी दखल पसंद नहीं करता। मैं देखता हूं कि धीरे-धीरे मैं उनकी हर बात से खीजने लगा हूं। मुझे बहुत बुरा भी लगता है, लेकिन स्थिति-परिस्थिति में मेरी खीज निकल ही जाती है। मैं क्या करूं?

आर एल पाठक, प्रयागराज

ओशो : परिवार के साथ समस्या यह है कि बच्चे बचपन के बाहर निकल जाते हैं, किंतु माता-पिता अपने पितृत्व से कभी बाहर नहीं निकलते। मनुष्य ने अभी तक यह भी नहीं सीखा है कि पितृत्व कोई ऐसी चीज नहीं है कि तुम सदैव इससे चिपके रहो। जब बच्चा बड़ा हो जाता है, तो पितृत्व समाप्त हो जाता है। बच्चे को इसकी आवश्यकता थी—वह

विवश था, किंतु जब बच्चा अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है तो माता-पिता को उससे अलग होना सीखना चाहिए। क्योंकि माता-पिता अपने बच्चे की जिंदगी से कभी भी अलग नहीं हो पाते। वे स्वयं चिंता में डूबे रहते हैं और बच्चों के लिए भी तनाव पैदा करते हैं। वे नष्ट कर देते हैं, बच्चों के मन में अपराध-भाव उत्पन्न करते हैं। एक निश्चित सीमा के बाद वे सहायता नहीं करते हैं।

माता-पिता होना एक बहुत बड़ी कला है। बच्चों को जन्म देना तो कोई बड़ी बात नहीं—ऐसा तो कोई भी पशु कर सकता है; यह प्राकृतिक, जैविक, सहज प्रवृत्ति से उपजी प्रक्रिया है। किंतु माता-पिता होना कुछ अलग बात है, बहुत कम लोग ही वास्तविक माता-पिता हो सकते हैं।

उसका माप-दंड यह है कि वास्तविक माता-पिता स्वतंत्रता देंगे। वे बच्चे के ऊपर स्वयं को नहीं थोपेंगे, वे उसकी निजता पर अतिक्रमण नहीं करेंगे। शुरू से ही उनका प्रयास होगा अपने जैसा बनने में बच्चे की सहायता करना। वे सहायता करने के लिए होते हैं, वे उन्हें मजबूत करने के लिए हैं, उनकी परवरिश करने के लिए हैं लेकिन अपने विचार थोपने के लिए नहीं। उन्हें दास बनाने के लिए नहीं हैं। किंतु दुनिया भर में माता-पिता यही करते जा रहे हैं। उनका सारा प्रयास बच्चे के माध्यम से अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना होता है।

कोई भी कभी अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाया है, इसलिए हर माता या पिता भीतर से उद्विग्न रहते हैं। वह जानता है कि प्रतिदिन मृत्यु निकट आ रही है। वह महसूस कर सकता है कि मृत्यु बड़ी होती जा रही है और जीवन सिमट रहा है, उसकी महत्वाकांक्षाएं अभी अधूरी हैं, उसकी इच्छाएं अभी पूरी नहीं हुई हैं। वह जानता है कि वह एक असफल व्यक्ति रहा है। अब उसका पूरा प्रयास यही होता है कि अपनी महत्वाकांक्षाओं को बच्चे में कैसे रोपा जाए। वह चला जाएगा, मगर जो वह कर नहीं पाया, उसे बच्चा कर सकेगा। कम से कम बच्चे के माध्यम से उसके कुछ स्वप्न तो पूरे हो जाएंगे।

लेकिन ऐसा कभी नहीं होगा। जो होगा वह यह कि बच्चा भी माता-पिता की तरह अधूरा रहेगा और वह अपने बच्चों के साथ यहीं करता रहेगा। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक यही चलता रहेगा। हम अपनी बीमारियां देते रहेंगे, हम अपने विचारों का संक्रमण बच्चे में करते रहेंगे, जो हमारे अपने जीवन में सही सिद्ध नहीं हुए हैं।

सभी माता-पिता अपने बच्चों से निराश रहते हैं। और यह मैं निरपवाद रूप से कहता हूं। गौतम बुद्ध के माता-पिता भी अपने बेटे से बहुत अधिक निराश थे। जीसस क्राइस्ट के माता-पिता उनसे बहुत अधिक निराश थे, स्वभावतः। उन्होंने एक अलग ही तरह का जीवन जीया था, वे कट्टर यहूदी थे और यह बेटा—यह जीसस—बहुत से पारम्परिक विचारों, प्रथाओं के विपरीत जा रहा था। जीसस के पिता, जोसफ ने आशा की होगी कि अब वह स्वयं वृद्ध हो रहे हैं और बेटा उनकी काष्ठकारी में सहायता करेगा—और मूर्ख बेटा परमात्मा के साम्राज्य की बात करने लगा था। क्या तुम्हारे विचार से जोसफ अपनी वृद्धावस्था में बहुत प्रसन्न थे?

तुम्हारे माता-पिता तुमसे निराश होंगे क्योंकि वे तुम्हारे माध्यम से कुछ अपेक्षाओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करते रहे, अब उनकी समस्त अपेक्षाएं धराशायी हो गई हैं। उनका निराश होना स्वाभाविक है, किंतु इस कारण से अपराधी मत महसूस करो, अन्यथा वे तुम्हारी खुशी, तुम्हारी शांति और तुम्हारे विकास को नष्ट कर देंगे। तुम अविचलित, चिंता रहित हो जाओ। तुम्हारा जीवन तुम्हारा है और तुम्हें इसे अपने प्रकाश के अनुसार जीना है।

जब तुम अपनी प्रसन्नता के स्रोत को, अपने भीतरी आनंद को उपलब्ध हो जाते हो तब उन्हें बांटने के लिए जाओ। वे क्रोधित होंगे। प्रतीक्षा करो, क्योंकि क्रोध कोई स्थायी नहीं होता, यह तो एक बादल की तरह आता है और चला जाता है। प्रतीक्षा करो। वहां जाकर उनके साथ रहो—लेकिन तभी जब तुम्हें यह निश्चित हो जाए कि तुम अब शांत रह सकते हो, जब तुम जान लेते हो कि किसी भी बात से तुममें प्रतिक्रिया नहीं होगी, जब तुम समझ गये होते हो कि उनके क्रोधित होने पर भी तुम प्रेम से प्रत्युत्तर दे सकोगे। उनकी सहायता करने का यही एकमात्र रास्ता है।

वे (माता-पिता)हर समय चिंतित रहते हैं। यह उनकी नियति बन जाती है। संसार में यह सबकी कंडीशनिंग, गहरी आदत हो गई है। तुम उनकी गंभीरता से, उनके चिंता करने से चिंतित न होओ। अचेतन रूप से वे तुम्हें अपराधी अनुभव कराने की कोशिश कर रहे हैं, उन्हें सफल मत होने दो, क्योंकि यदि वे सफल हो गए तो वे तुम्हें नष्ट कर देंगे और वे उस अवसर को भी नष्ट कर देंगे जो उन्हें मिल रहा है, जो तुम्हारे माध्यम से सफल हो सकता था।

उनके पास से चले जाने की आवश्यकता नहीं है किंतु उनका अनुकरण करने की भी आवश्यकता नहीं। उन्हें प्रेम करते रहो, मगर उनका अनुसरण मत करो। इससे न तो तुम्हें कोई सहायता मिलेगी ओर न उनको।

तुम उन्हें यह दो कि तुम स्वयं बनो, आनंदित होओ, आत्मविभोर होओ, कि तुम स्वयं में एक उत्सव बन जाओ। तुम्हें हंसना और आनंदित होना सीखना होगा। फिर अपनी खुशी बांटने के लिए अपने माता-पिता के पास जाओ, अपनी ध्यानपूर्णता का कुछ हिस्सा उनके साथ बांटो।

मैं यह नहीं कर रहा हूं कि उनके पास से चले जाओ, मैं तो कह रहा हूं कि उनका अनुसरण मत करो। उन्होंने तुम्हारी शारीरिक मदद की, तुम्हें आध्यात्मिक रूप से उनकी मदद करनी चाहिए। उनके ऋण चुकाने का यही एक तरीका है।

आई एम दैट

अपने रोजमर्रा के जीवन में लायें

ध्यान का स्वाद

ओशो द्वारा सुझाये छोटे-छोटे प्रयोगों के साथ

तुम जरा प्रयोग करके देखो। अंतर्जगत के थोड़े प्रयोग करने चाहिए। प्रश्नों के उत्तर मुझसे नहीं मिलेंगे। मैं केवल इंगित कर सकता हूं, इशारे दे सकता हूं। इशारे कि तुम प्रयोग कर सको। प्रयोगों से तुम्हें उत्तर मिलेंगे, समाधान मिलेंगे। तुम्हारा प्रयोग ही तुम्हारे लिए समाधान बन जाएगा।

रात सोने से पहले और सुबह जागने से पहले एक प्रयोग

सोने के पहले दस मिनट जोर से श्वास को छोड़ें और ओऽऽऽ...की आवाज करते हुए छोड़ें। और फिर सो जाएं। उसी ओ की आवाज करते-करते लीन हो जाएं, सो जाएं।

सुबह जैसे ही आपको पता चले कि नींद खुल गई है, आंख मत खोलें। जैसे ही अनुभव में आ जाए कि नींद खुल गई, पहला काम करें—जैसा कि बिल्लियां या कुत्ते पूरे शरीर को खींचते हैं, तानते हैं—वैसा पूरे शरीर के अंगों को खींचें, तानें, शिथिल करें, ताकि पूरे शरीर में शक्ति का प्रवाह हो जाए। सारे अंगों को खींचें और ढीला छोड़ दें, खींचें और ढीला छोड़ दें। पैरों को, हाथों को, गर्दन को, पूरे शरीर को अकड़ाएं और सब तरह से, जैसा कि पशु करते हैं, ताकि शरीर की शक्ति पूरी तरह प्रवाहित हो जाए। ढाई मिनट, दो-ढाई मिनट, अभी भी आंख न खोलें और जब दो-ढाई मिनट ऐसा करने के बाद आप पाएं कि स्फूर्ति आ गई, सारा शरीर जग गया, रोआं-रोआं जग गया, तब ढाई मिनट तक खिलखिला कर पागल की तरह हंसें। आंख बंद ही रखें। उसके बाद ही बिस्तर छोड़ें।

कठोपनिषद, प्रवचन 5

हाथों में अपना पूरा प्रेम उंडेल दें

जीवन में बड़े छोटे-छोटे काम हैं, बड़े छोटे-छोटे काम हैं। और हम भूल ही गए हैं। यानि मैं आपसे यह कहता हूं, जब आप किसी के कंधे पर हाथ रखते हैं, तो अपने सारे हृदय के प्रेम को अपने हाथ से उसके पास भेजें। अपने सारे प्राण को, अपने सारे हृदय को उस हाथ में संकलित होने दें और जाने दें। और आप हैरान होंगे, वह हाथ जादू हो जाएगा। और जब आप किसी की आंख में झांकते हैं, तो अपनी आंखों में अपने सारे हृदय को उंडेल दें। और आप हैरान हो जाएंगे, वे आंखें जादू हो जाएंगी और वे किसी के भीतर कुछ हिला देंगी। न केवल आपका प्रेम जागेगा, बल्कि हो सकता है कि दूसरे के प्रेम जगने के भी आप उपाय और व्यवस्था कर दें।

ध्यान-सूत्र, प्रवचन 5

पूरे शरीर को आनंद लेने दें

कभी आपने खयाल किया कि आप अपने पैर धो रहे हैं, तो आपने पैर को इस तरह से धोया हो कि पैर में भी कोई आत्मा है? कभी आप हाथ धो रहे हैं पानी से, तो कभी आपने पानी का पूरा आनंद हाथों को लेने दिया है? नहीं, जब आप हाथ धो रहे हैं पानी से तो हाथों को कोई आनंद मिलने का सवाल नहीं है। तब भी आपकी खोपड़ी अपना काम कर रही है। हाथ तो मशीन की तरह धुल जाएंगे और आप हट जाएंगे। कभी आपने स्नान करते वक्त पूरे शरीर को आनंद लेने दिया है? न, कहां फुरसत है, पूरे शरीर को धो डालेंगे किसी तरह। पानी गिर जाएगा उसके ऊपर, साबुन भी लगेगी, साबुन भी बह जाएगी और आप अपनी खोपड़ी से पूरे वक्त काम करते रहेंगे। आप स्नान करके लौट आएंगे, लेकिन शरीर स्नान के आनंद को अनुभव नहीं कर पाएगा।

कल जरा प्रयोग करके देखें। जब स्नान कर रहे हों तब पूरे शरीर को पानी के स्पर्श का आनंद लेने दें और पानी की ताजगी को पूरे शरीर को छूने दें। शरीर के रोएं-रोएं को स्नान करने दें। और कृपा करके थोड़ी देर को खोपड़ी के लिए छुट्टी दे दें। थोड़ी देर के लिए पूरे शरीर में फैल जाएं और खोपड़ी से कहें, तुम्हीं नहीं हो, यह पूरा शरीर मैं हूं। इस पूरे शरीर में मैं हूं। और तब आप नहाने से एक नई ताजगी लेकर निकलेंगे, जो आप कभी लेकर नहीं निकले।

करुणा और क्रांति, प्रवचन 5

कभी घंटा भर थोड़ी गहरी सांस ले लें

कभी घंटे भर के लिए खाली स्वच्छ स्थान में बैठ कर धीमे से थोड़ी गहरी श्वास ले लें, तो शरीर को लाभ पहुंचेगा। और श्वास की जो रिदम है, वह मन के शांत करने में सहयोगी हो जाती है।

असल में, सब रिदम शांति लाती है। किसी तरह की रिदम हो, किसी तरह की गतिबद्धता हो, वह शांति लाती है।

वहां बर्मा में या कुछ और मुल्कों में तो ध्यान के लिए अनिवार्य मानते हैं श्वास में रिदम पैदा करना। कहीं आधे घंटे को बैठ जाएं और श्वास के आने-जाने को देखते रहें। श्वास भीतर गई तो स्मरणपूर्वक भीतर जाने दें, बाहर गई तो स्मरणपूर्वक बाहर जाने दें। फिर भीतर गई तो स्मरणपूर्वक—वह जागरूकता का प्रयोग करें। तो उसमें दोहरे फायदे होंगे। श्वास थोड़ी देर में रिदम पकड़ लेगी। रिदम का परिणाम स्वास्थ्य पर अच्छा होगा। और दूसरा वह जो मैं जागरूकता कह रहा हूं, वह श्वास के माध्यम से जागरूकता विकसित होने लगेगी। और वह जागरूकता जो श्वास के संबंध में विकसित हो गई, उसी जागरूकता का प्रयोग मन के संबंध में, विचार के संबंध में किया जा सकता है। और सच तो यह है कि अगर आप श्वास के प्रति भी जागरूक हो जाएं, तो भी चित्त में विचार शून्य हो जाएंगे। श्वास और विचार बंधे हुए हैं। अगर पांच मिनट बैठ कर आप श्वास को देखते रहें श्वास-प्रश्वास को आप अचानक पाएंगे कि मन शून्य हो गया।

प्रेम नदी के तीरा, प्रवचन 12

गुलाब के साथ निशब्द दर्शन का प्रयोग

एक गुलाब के फूल के पास आप खड़े हैं। आपको खयाल आता है, यह गुलाब का फूल है, बस बाधा पड़ गई। फूल उस तरफ रह गया, बीच में शब्द आ गया। अब जरूरी है कि शब्द को हटा दें बीच से ताकि फूल से संबंध हो सके। तो आंख बंद कर लें और 'यह गुलाब का फूल है' इस शब्द पर ध्यान ले जाएं, पूरा निरीक्षण ले जाएं, और इस शब्द को पकड़ने की कोशिश करें कि रुक जाओ, 'यह गुलाब का फूल है' इस शब्द को मैं पूरी तरह देख लेना चाहता हूं। रुक जाओ, भागो मत। और आप थोड़ी देर में पाएंगे कि वह रुका हुआ शब्द एवोपरेट होने लगा, उड़ने लगा, भागने लगा। वह शब्द भाग जाए फिर आंख खोल कर गुलाब के फूल को देखें। और अगर फिर खयाल आ जाए कि यह गुलाब का फूल है, फिर आंख बंद कर लें, फिर उस शब्द को निरीक्षण करें। जब तक कि आप बिना शब्द के गुलाब के फूल को देखने में समर्थ न हो जाएं तब तक इस प्रक्रिया को जारी रखें।

आप थोड़े ही दिन के प्रयोग में उस जगह पर पहुंच जाएंगे जहां आपकी आंख गुलाब के फूल को देखेगी लेकिन आपकी स्मृति नहीं कहेगी कि यह गुलाब का फूल है। सिर्फ देखते हुए आप रह जाएंगे। बीच में कोई शब्द नहीं उठेगा। और जिस दिन निःशब्द दर्शन हो जाता है उस दिन गुलाब के फूल से आपकी आत्मा एक हो गई। उस दिन आप जानेंगे क्या है गुलाब का फूल। उस दिन आप जानेंगे, सूरज क्या है। उस दिन आप जानेंगे, चांदनी क्या है। फिर वैसा व्यक्ति जब एक फूल को देखता है, गुलाब के फूल को देखता है, तो उसे गुलाब का फूल ही नहीं दिखाई पड़ता, फिर फूल के पीछे की शाखाएं, फिर शाखाओं के नीचे की जड़ें, फिर जड़ों से जुड़ी हुई पृथ्वी, फिर फूल पर आई हुई सूरज की किरणें और सूरज सब संयुक्त दिखाई पड़ने लगता है, फिर वह प्रविष्ट हो जाता है विराट में और सारे जीवन का दर्शन उसे शुरू हो जाता है।

और जिस दिन आपको निःशब्द दर्शन की यह संभावना स्पष्ट होने लगेगी, उस दिन इसका अंतिम प्रयोग स्वयं पर किया जाता है। तब निःशब्द होकर अपने को देखा जा सकता है। और उस दिन आप जानेंगे कि मैं कौन हूं? उस दिन जीवन की पहली और बुनियादी समस्या हल होती है कि मैं कौन हूं? और जिसके समक्ष यह समस्या हल हो जाती है उसका जीवन एक बिलकुल अभिनव, एक बिलकुल नया जीवन हो जाता है। उसके जीवन में आमूल-क्रांति हो जाती है। उसके जीवन में क्रोध की जगह क्षमा का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में घृणा की जगह प्रेम का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में भय की जगह अभय का जन्म हो जाता है। उसके जीवन में कांटे विलीन हो जाते और फूल खिल जाते हैं। उसके जीवन में अर्थहीनता नष्ट हो जाती है, सार्थकता पैदा हो जाती है। फिर उसे मनोरंजन की तलाश नहीं होती। फिर वह चौबीस घंटे एक आनंद की थिरक में नाचता रह जाता है।

जीवन आलोक, प्रवचन 1

सूफी ज़िक्र : अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह...

सूफियों का जिक्र समझने जैसा है। कुछ तुममें से प्रयोग करना चाहें तो करें। सूफियों के जिक्र का आधार है: अल्लाह! शब्द बड़ा प्यारा है। शब्द में बड़ा रस है। वह तो हम हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई में बांट कर दुनिया को देखते हैं, इसलिए बड़ी रसीली बातों से वंचित रह जाते हैं। मैंने बहुत से शब्दों पर प्रयोग किया, 'अल्लाह' जैसा प्यारा शब्द नहीं है। 'राम' में वह मजा नहीं है। तुम जब गुनगुनाओगे, तब पता चलेगा। जो गुनगुनाहट अल्लाह में पैदा होती है और जो मस्ती अल्लाह में पैदा होती है—वह किसी और शब्द में नहीं होती। चेष्टा करके देखना।

कभी रात के अंधेरे में द्वार-दरवाजे बंद करके दीया बुझा कर बैठ जाना, ताकि बाहर कुछ दिखाई ही न पड़े, अंधेरा कर लेना। नहीं तो तुम्हारी आदत तो पुरानी है, कुछ न कुछ देखते रहोगे। फिर भीतर बैठ कर पहला कदम है जिक्र का: 'अल्लाह-अल्लाह' कहना शुरू करना। जोर से कहना। ओंठ का उपयोग करना। एक पांच-सात मिनट तक 'अल्लाह-अल्लाह' जोर से कहना। पांच-सात मिनट में तुम्हारे भीतर रसधार बहनी शुरू होगी, तब ओंठ बंद कर लेना। दूसरा कदम: अब सिर्फ भीतर जीभ से कहना, 'अल्लाह-अल्लाह-अल्लाह'! पांच-सात मिनट जीभ का उपयोग करना, तब भीतर ध्वनि होने लगेगी; तब तुम जीभ को भी छोड़ देना, अब बिना जीभ के भीतर 'अल्लाह-अल्लाह-अल्लाह' करना। पांच-सात मिनट...तब तुम्हारे भीतर और भी गहराई में ध्वनि होने लगेगी, प्रतिध्वनि होने लगेगी। तब भीतर भी बोलना बंद कर देना, 'अल्लाह-अल्लाह' वहां भी छोड़ देना। अब तो 'अल्लाह' शब्द नहीं रहेगा, लेकिन 'अल्लाह' शब्द के निरंतर स्मरण से जो प्रतिध्वनि गूंजी, वह गूंज रह जाएगी, तरंगें रह जाएंगी। जैसे वीणा बजते-बजते अचानक बंद हो गई, तो थोड़ी देर वीणा तो बंद हो जाती है, लेकिन श्रोता गदगद रहता है, गूंज गूंजती रहती है; ध्वनि धीरे-धीरे-धीरे शून्य में खोती है।

तो तुमने अगर पंद्रह-बीस मिनट अल्लाह का स्मरण किया, पहले ओंठों से, फिर जीभ से, फिर बिना जीभ के, तो तुम उस जगह आ जाओगे, जहां दो-चार-पांच मिनट के लिए 'अल्लाह' की गूंज गूंजती रहेगी। तुम्हारे भीतर जैसे रोआं-रोआं 'अल्लाह' करेगा। तुम उसे सुनते रहना। धीरे-धीरे वह गूंज भी खो जाएगी।

और तब जो शेष रह जाता है, वही अल्लाह है! तब जो शेष रह जाता है, वही राम है। शब्द भी नहीं बचता, शब्द की अनुगूंज भी नहीं बचती—एक महाशून्य रह जाता है। सुरति!

'राम' शब्द का उपयोग करो, उससे भी हो जाएगा। 'ओम' शब्द का उपयोग करो, उससे भी हो जाएगा। लेकिन 'अल्लाह' निश्चित ही बहुत रसपूर्ण है। और तुम सूफियों को जैसी मस्ती में देखोगे, इस जमीन पर तुम किसी को वैसी मस्ती में न देखोगे। जैसी सूफियों की आंख में तुम शराब देखोगे, वैसी किसी की आंख में न देखोगे। हिंदू संन्यासी ओंकार का पाठ करता रहता है, लेकिन उसकी आंख में नशा नहीं होता, मस्ती नहीं होती।

'अल्लाह' शब्द तो अंगूर जैसा है, उसे अगर ठीक से निचोड़ा तो तुम बड़े चकित हो जाओगे। तुम चलने लगोगे नाचते हुए। तुम्हारे जीवन में एक गुनगुनाहट आ जाएगी।

अष्टावक्र महागीता, प्रवचन 30

मन को पूरी स्वतंत्रता दे दें

कभी-कभी आंख बंद कर लो और अपने मन को कहो कि तू जो चाहे कर। तुझे जो विचार उठाने हैं, वह उठा। संकोच न कर, बुरे-भले की भी फिक्र मत कर, अब तक दबा-दबा रहा—यह उठा, यह न उठा—अब तू उठा जो तुझे उठाना है। सब लहरें उठा। हम तो तट पर बैठ गए, तटस्थ हो गये। हम तो कूटस्थ हो गए। हम तो बैठ कर देखेंगे तेरी लीला। तू नाच। हम देखेंगे। मन से कह दो कि तू नाच और भरपूर नाच और जैसा नाचना है वैसा नाच—सुंदर, असुंदर; श्लील, अश्लील, जैसा भी, हम देखेंगे। और तुम बड़े चकित हो जाओगे।

जैसे ही तुम यह कहकर बैठोगे देखने को, तुम पाओगे मन चलता ही नहीं, सरकता ही नहीं। एक विचार-तरंग नहीं उठती। कुछ क्षणों को तो मन एकदम स्तब्ध रह जाएगा। तुम करके देखना जो मैं कह रहा हूं। आज ही करके देखना। कुछ क्षण को तो मन बिलकुल स्तब्ध रह जाएगा। क्योंकि उस घड़ी में साक्षी बहुत सघन होगा, ताजा-ताजा होगा। साक्षी के सामने मन कभी खड़ा हो पाया? साक्षी की गैर-मौजूदगी मन है। जब साक्षी प्रगाढ़ होता है, तो मन शून्य होता है। जब साक्षी सोया होता है, तब मन खूब खुल कर खेलता है।

तो बैठ कर क्षण भर को, सब ऊर्जा इकट्ठी करके, संगृहीत करके, संगठित करके, एक प्रगाढ़ चैतन्य बन कर—थोड़ी ही देर रह पाओगे तुम उतनी प्रगाढ़ता में, क्षण, दो क्षण—मगर उन दो क्षण में भी स्वाद आ जाएगा। ज्यादा देर न टिकेगी यह प्रगाढ़ता, क्योंकि तुम्हें इसका अभ्यास नहीं है, तुम्हें अभ्यास तो सोने का है; दो क्षण, तीन क्षण और तुम फिर झपकी खाने लगोगे। इधर तुमने झपकी खाई, उधर मन उठा, विचार चले। जैसे ही विचार चले, समझ जाना कि झपकी खा गए, यह सपना उठ आया। यह सपना प्रतीक है कि तुम झपकी खा गए, साक्षी खो गया। तब फिर एक झटका अपने को देना और कहना कि ठीक, अब मैं फिर बैठता हूं, अब तू फिर चल। जब-जब तुम सम्हल कर बैठोगे तब-तब तुम पाओगे मन बंद हो जाता है। और जब-जब तुम होश खो दोगे तब-तब तुम पाओगे मन फिर शुरू हो जाता है।

अष्टावक्र महागीता, प्रवचन 84

क्रोध को पूरा देख लें

जब क्रोध उठे, तब उसकी फिकर छोड़ दें, जिस पर क्रोध उठा; क्योंकि उसकी फिकर की, तो चूके। उसकी फिकर में ही चूकते हैं। किसी ने गाली दी; गाली की फिकर छोड़ें; गाली देने वाले की फिकर छोड़ें। इस वक्त तो उसको कहें कि अभी ठहरो जरा; मैं अपना काम करके आधा घंटे में लौट कर आता हूं। द्वार बंद करें, आंख बंद करें।

भूलें बाहर को। धन्यवाद दें, जिसने क्रोध को उठाया, क्योंकि एक मौका दिया ध्यान का। आंख बंद करें और देखें कि क्रोध क्या है? कहां है? कैसे उठता? कैसे गहन होता? कैसे छा जाता है पूरे प्राणों पर धुएं की भांति? कैसे पकड़ लेता? कैसे खून-खून गरम हो जाता? कैसे रक्त का कण-कण विषाक्त हो जाता? कैसे सारा शरीर उत्तप्त और फीवरिश हो जाता? कैसे मन बेहोश हो जाता? देखें, और बहुत हैरान होंगे।

जैसे-जैसे देखने की क्षमता बढ़ेगी, जैसे-जैसे पहचानने की सामर्थ्य बढ़ेगी, जैसे-जैसे साक्षी जगेगा, वैसे-वैसे क्रोध तिरोहित होगा। किसी दिन जब पूरे क्रोध को आमने-सामने देख पाएंगे, इन इट्स टोटल नैकेडनेस, क्रोध को उसकी पूरी ही नग्नता में, रोएं-रोएं में जब क्रोध को पहचान पाएंगे, हृदय के कोने-कोने में, चेतन-अचेतन में सब तरफ जब क्रोध को देख पाएंगे कि यह रहा क्रोध, उसी दिन पाएंगे कि क्रोध रूपांतरित हो गया।

गीता-दर्शन, अध्याय 4 प्रवचन 17

जितना होश, उतनी शांति

कभी आपने खयाल किया? इस हाथ को नीचे से ऊपर तक उठाएं होश से भर कर, आपको पूरा पता हो कि हाथ उठ रहा है। और आप हैरान हो जाएंगे। जितनी देर आप जागे रहेंगे कि हाथ उठ रहा है, उतनी देर चित्त शांत हो जाएगा।

जाग्रत चित्त शांत होता है, सोया चित्त अशांत होता है। रास्ते पर चल कर देखें दस मिनट भी जागे हुए। और जितनी देर होश रहेगा कि मैं चल रहा हूं, उतनी देर चित्त शांत रहेगा; जैसे ही होश जाएगा, चित्त अशांत हो जाएगा।

हमारी सामान्य क्रियाओं से शुरू करना जरूरी है साक्षी का भाव—चलते, उठते, खाना खाते, सुनते, बोलते।

जीवन सत्य की खोज, प्रवचन 3

तराजू के पलड़ों को साधें

लाओत्से के साधना-सूत्रों में एक गुप्त सूत्र आपको कहता हूं, जो उसकी किताबों में उल्लिखित नहीं, लेकिन कानों-कान लाओत्से की परंपरा में चलता रहा है। वह सूत्र है लाओत्से की ध्यान की पद्धति का। वह सूत्र यह है। लाओत्से कहता है कि पालथी मार कर बैठ जाएं और भीतर ऐसा अनुभव करें कि एक तराजू है, बैलेंस, एक तराजू। उसके दोनों पलड़े आपकी दोनों छातियों के पास लटके हुए हैं और उसका कांटा ठीक आपकी दोनों आंखों के बीच, तीसरी आंख जहां समझी जाती है, वहां उसका कांटा है। तराजू की डंडी आपके मस्तिष्क में है। दोनों उसके पलड़े आपकी दोनों छातियों के पास लटके हुए हैं। और लाओत्से कहता है, चौबीस घंटे ध्यान रखें कि वे दोनों पलड़े बराबर रहें और कांटा सीधा रहे।

लाओत्से कहता है कि अगर भीतर इस तराजू को साध लिया, तो सब सध जाएगा।

लेकिन आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। जरा इसका प्रयोग करेंगे, तब आपको पता चलेगा। जरा सी श्वास भी ली नहीं कि एक पलड़ा नीचा हो जाएगा, एक पलड़ा ऊपर हो जाएगा। अकेले बैठे हैं, और एक आदमी बाहर से निकल गया दरवाजे से। उसको देख कर ही, अभी उसने कुछ किया भी नहीं, एक पलड़ा नीचा, एक ऊपर हो जाएगा।

लेकिन एक बार यह सधने लगे तो यह चौबीस घंटे चलेगा। फिर जीवन में सुख हो या दुख, सम्मान या अपमान, अंधेरा या उजाला, भीतर के तराजू को साधते चला जाए कोई, तो एक दिन उस परम संतुलन पर आ जाता है, जहां जीवन तो नहीं होता, अस्तित्व होता है; जहां लहर नहीं होती, सागर होता है; जहां मैं नहीं होता, सब होता है।

ताओ उपनिषद, प्रवचन 31

देखने वाले को देखें और सुनने वाले को सुनें

वृक्ष के पास बैठे हैं, वृक्ष दिखाई पड़ रहा है, तो धीरे-धीरे वृक्ष को देखते-देखते, उसको देखना शुरू करें जो वृक्ष को देख रहा है। जरा से हेर-फेर की बात है। साधारणतः चेतना का तीर वृक्ष की तरफ जा रहा है। इस तीर को दोनों तरफ जाने दें। इसका फल दोनों तरफ कर लें—वृक्ष को भी देखें और साथ ही चेष्टा करें उसको भी देखने की, जो देख रहा है। देखने वाले को न भूलें। देखने वाले को पकड़-पकड़ लें। बार-बार भूलेगा—पुरानी आदत है; जन्मों की आदत है। भूलेगा, लेकिन बार-बार देखने वाले को पकड़ लें। जैसे-जैसे देखने वाला पकड़ में आने लगेगा, कभी-कभी क्षण भर को ही आएगा; लेकिन क्षण भर को ही पाएंगे कि एक अपूर्व शांति का उदय हुआ! एक आशीष बरसा!! एक सौभाग्य की किरण उतरी!!! एक क्षण को भी अगर ऐसा होगा तो एक क्षण को भी मुक्ति का आनंद मिलेगा। और वह आनंद तुम्हारे जीवन के स्वाद को और जीवन की धारा को बदल देगा। शब्द नहीं बदलेंगे तुम्हारे जीवन की धारा को, शास्त्र नहीं बदलेंगे—अनुभव बदलेगा, स्वाद बदलेगा!

यहां मुझे सुन रहे हैं—दो तरह से सुना जा सकता है। सुनते वक्त मैं जो बोल रहा हूं, अगर उस पर ही ध्यान रहे और तुम अपने को भूल जाओ तो फिर तुम द्रष्टा न रहे, श्रोता न रहे, श्रावक न रहे। तुम्हारा ध्यान मुझ पर अटक गया, तो तुम दर्शक हो गए। आंख से ही दर्शक नहीं हुआ जाता, कान से भी दर्शक हुआ जाता है। जब भी ध्यान ऑब्जेक्ट पर, विषय पर अटक जाए तो तुम दर्शक हो गए।

सुनते वक्त, सुनो मुझे; साथ में उसको भी देखते रहो, पकड़ते रहो, टटोलते रहो—जो सुन रहा है। निश्चित ही तुम सुन रहे हो, मैं बोल रहा हूं: बोलने वाले पर ही नजर न रहे, सुनने वाले को भी पकड़ते रहो, बीच-बीच में उसका खयाल लेते रहो। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जिस घड़ी में तुमने सुनने वाले को पकड़ा, उसी घड़ी में तुमने मुझे सुना; शेष सब व्यर्थ गया।

सुनते-सुनते उसको भी सुनने लगो जो सुन रहा है। तीर दोहरा हो जाए: मेरी तरफ और तुम्हारी तरफ भी हो। अगर मैं भूल जाऊं तो कोई हर्जा नहीं, लेकिन तुम नहीं भूलने चाहिए। और एक ऐसी घड़ी आती है, जब न तो तुम रह जाते हो, न मैं रह जाता हूं। एक ऐसी परम शांति की घड़ी आती है, जब दो नहीं रह जाते, एक ही बचता है; तुम ही बोल रहे हो, तुम ही सुन रहे हो; तुम ही देख रहे हो, तुम ही दिखाई पड़ रहे हो।

अष्टावक्र महागीता, प्रवचन 3

रास्ते के किनारे अदृश्य होने का प्रयोग

कभी रास्ते के किनारे खड़े होकर एक छोटा सा प्रयोग करना। रास्ता चलता है, लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं। रास्ते के किनारे खड़े होकर देखना कि तुम्हें तो कोई भी नहीं देख सकता है। तुम अदृश्य हो। और जिसे वे देख रहे हैं, वह तुम्हारी दृश्य खोल है। तुम्हें कोई भी नहीं देख सकता। ये इतनी आंखें, जो रास्ते से गुजर रही हैं—तुम्हें नहीं देखतीं, सिर्फ परिधि को छूती हैं। तुम अस्पर्शित रह जाते हो।

तुम कौन हो?—यह जो दिखाई नहीं पड़ रहा है, किसी को भी। रास्ते पर तुम खड़े हो, भरे बाजार में और तुम्हारे भीतर जो चेतना है, वह किसी को भी दिखाई नहीं पड़ रही है—अदृश्य है। इसका स्मरण थोड़ा भरने देना कि मैं अदृश्य हूं, मुझे कोई भी नहीं देख रहा है। मुझे कोई देखना भी चाहे तो देख नहीं सकता। और जिसे लोग देख रहे हैं, वह मैं नहीं हूं। वह तो केवल देह है, कल जवान थी, आज बूढ़ी है। कल थी, कल नहीं हो जाएगी। ऊपर की खोल है, मेरा वस्त्र है।

'मैं कौन हूं?' उस भरे बाजार में तुम अपने पर खयाल करना, अचानक जैसे सारा फोकस बदल जाए, जैसे ध्यान की सारी की सारी प्रक्रिया बदल जाए—शरीर से आत्मा की तरफ तुम्हारा रुख हो जाए। एक क्षण को भी अगर ऐसा हुआ, तो उस भरे बाजार में तुम अकेले हो जाओगे। सब खो जाता है। तुम्हीं हो—अत्यंत अकेले।

और यह जो स्थिति है तुम्हारी—यही स्थिति सिद्ध की है। यह तुम्हें क्षण भर रहेगी, फिर चूक जाओगे तुम। फिर झपकी लग जाएगी। फिर तुम लोगों को देखने लगोगे। फिर तुम समझने लगोगे लोग तुम्हें देख रहे हैं। सिद्ध की यह स्थिति सदा बनी रहती है। तुम्हारी यह स्थिति कभी क्षण भर को बनती है और खो जाती है। लेकिन यह स्थिति तुम्हारे भीतर है। तुम भूल जाओ, तो भी खो नहीं सकते। सिर्फ स्मरण चाहिए।

तुम बाजार में यह प्रयोग करना। बाजार से अच्छी जगह तुम हिमालय पर भी न पा सकोगे। क्योंकि वहां तुम दूसरों पर ध्यान रखना और देखना कि वे तुम्हें देख रहे हैं और फिर भी कोई तुम्हें नहीं देख रहा है। कोई तुम्हें देख नहीं सकता, तुम अदृश्य हो। यहां, इस बीच बाजार में खड़े बिलकुल अकेले हो, इस भीड़ के बीच अत्यंत एकाकी हो। धीरे-धीरे भीड़ दूर होती जाएगी। जैसे सपना हो गई। जैसे-जैसे तुम अपने करीब आओगे, भीड़ दूर होती जाएगी। कई बार तुम्हें ऐसा लगेगा कि भीड़ करीब आई, दूर हुई; करीब आई, दूर हुई। कई बार बाजार की आवाजें बहुत दूर सुनाई पड़ने लगेंगी, जैसे कहीं किसी दूसरे गांव में। जब तुम अपने करीब होओगे, बाजार दूर हो जाएगा। जब तुम अपने से दूर होओगे, बाजार करीब आ जाएगा। और यह पूरे समय तुम्हारा फोकस बदलेगा। एक क्षण को भी अगर वहां भीतर जागना हो जाएगा, तो बाहर से तुम सो जाओगे। जैसे ही भीतर की तारी लगी तुम सिद्ध हो।

सहज समाधि भली, प्रवचन 4

खाली बैठे हुए, आंखें बंद कर लें

तुम एक छोटा सा प्रयोग करो। जब भी तुम अकारण बैठे हो, कोई काम नहीं है, मत आंख को खोलो। और तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर एक शक्ति का जन्म हो रहा है। तुम जल्दी ही पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक नई शक्ति और एक नई क्षमता इकट्ठी हो रही है। तुम चीजों को पैना देखने लगोगे, गहरा देखने लगोगे। कल जो चीज ऊपर से उथली-उथली दिखाई पड़ती थी, अब तुम गहरा देख सकोगे। तुम मुझे सुनोगे उसके बाद, तब तुम पाओगे कि तुम उस मेरे सुनने में कुछ और देखने लगे जो तुमने कभी न देखा था। मेरे शब्द वही थे, मैं वही था, लेकिन तुम्हारी देखने की क्षमता गहरी हो गई। जितनी बड़ी ऊर्जा हो उतनी गहरी जाती है।

अभी तुम्हारी देखने की क्षमता सुई की तरह है; अगर तुम इकट्ठा करो तो तलवार की तरह हो जाती है। तब बड़े गहरे तक उसकी चोट होती है। तब तुम देख कर कुछ चीजें देख लोगे जो तुम पहले हजार बार उपाय करते सोच कर तो भी नहीं सोच पाते थे। सोचने का सवाल नहीं है, देखने का सवाल है; दृष्टि पैनी चाहिए। वह पैनी होती है, उसमें निखार आता है, जितना तुम संजोओगे, जितना इकट्ठा करोगे। जब तुम व्यर्थ हो, कुछ नहीं कर रहे हो, आंख की कोई जरूरत नहीं है, मत खोलो। कार में बैठे हो, ट्रेन में बैठे हो, बस में सवार हो; तुम्हारी आंख की क्या जरूरत है? वह काम ड्राइवर कर रहा है। तुम नाहक ही अपनी आंख को दुखा रहे हो खिड़की में झांक-झांक कर। सड़क पर चलते हुए चेहरे, जिनका कोई प्रयोजन देखने का नहीं है। तुम आंख बंद कर लो। तुम मत देखो। तुम सिर्फ शांत रहो।

और एक खयाल करो। एक बहुत पुरानी तिब्बतन विधि है जो बड़े काम की है। जब भी तुम खाली बैठे हो, अगर आंख खोलनी भी पड़े, तो बहुत आहिस्ता खोलो। जैसे कोई पर्दा उठाया जा रहा है, बड़े धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, ऐसी तुम्हारी पलक उठे। फिर जब तुम पलक झपकाओ तो वैसी ही वापस धीरे-धीरे जाए, जैसे कोई पर्दा गिराया जा रहा है। और तुम एक बड़ी गहन शांति अनुभव करोगे। क्योंकि तुम्हारी आंख जितनी जल्दी खुलती है, जितनी जल्दी बंद होती है, उतना ही तनाव तुम्हारे भीतर के मस्तिष्क पर पड़ता है।

इंद्रियां हैं छिद्र, उन्हें भर दो। उन्हें भरने का एक ही उपाय है कि उनकी ऊर्जा को व्यर्थ मत बहाओ; वही ऊर्जा उन्हें भर देगी।

ताओ उपनिषद, प्रवचन 95

भिन्न परिस्थितियों में अपनी श्वास को नोट करें

जब तुम कभी शांत हो जाओ, तब उसकी जांच कर लेना कि श्वास कैसी चल रही है, शांति की अवस्था में। जब तुम कभी पाओ कि तुम प्रफुल्लित हो, तब भी श्वास को नोट कर लेना। और अगर तुम ठीक से श्वास की गति को पहचानने में समर्थ हो जाओ—आनंद के साथ, क्रोध के साथ, सुख के साथ, शांति के साथ—फिर तुम प्रयोग कर सकते हो। क्रोध आने को है, तुम श्वास को क्रोध की गति मत पकड़ने दो; तुम शांत बैठ जाओ और श्वास को वह गति दे दो, जो शांति में होती है—तुम अचानक पाओगे, क्रोध तिरोहित हो गया, क्रोध आ नहीं सकता। क्योंकि जब तक श्वास न बदले, तब तक क्रोध शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता। अगर तुम श्वास की गति को ठीक से पहचान लो कि शांति में कैसी होती है, तो चौबीस घंटे उस गति को वैसा ही बनाए रखने की कोशिश करो। तुम पाओगे तुम गहन शांति से भर गए। अगर तुम समझ लो कि जब तुम प्रफुल्लित होते हो, कैसी श्वास होती है, वैसी ही श्वास को बनाए रखो, प्रफुल्लता झर-झर कर बहती रहेगी।

सुनो भई साधो, प्रवचन 8

बीमारी को दूर से देखें

जब बीमारी आए तब बीमारी के भीतर दूर पड़े रह जाएं और बीमारी को देखते रहें। ऐसा मत अनुभव करें कि मैं बीमार हूं, ऐसा ही अनुभव करें कि मैं बीमारी का द्रष्टा हूं। और तब आप बहुत चकित हो जाएंगे: ऐसा अनुभव करते ही बीमारी क्षीण होने लगती है; ऐसा अनुभव करते ही आप और बीमारी के बीच अनंत फासला होने लगता है; ऐसा अनुभव करते ही अचानक आप पाते हैं कि भीतर सब स्वस्थ है—अचानक! जैसे अचानक अंधेरे में कोई दीया जला दे और सब स्पष्ट हो जाए। और वह स्पष्ट होने का जो क्षण है, वह साक्षी का क्षण है।

सर्वसार उपनिषद, प्रवचन 16

अपने ही हाथों को चूम कर देखें

आपको पता है, यह जो छोटी सी देह आपको मिली है, यह बड़ी अदभुत है। यह सबसे बड़ा मिरेकल है इस जमीन पर। आप थोड़ा सा खाना खाते हैं, आपका यह छोटा सा पेट उसे पचा देता है। यह बड़ा मिरेकल है।

अभी इतना वैज्ञानिक विकास हुआ है, अगर हम बहुत बड़े कारखाने खड़े करें और हजारों विशेषज्ञ लगाएं, तो भी एक रोटी को पचा कर खून बना देना मुश्किल है। एक रोटी को पचाकर खून बना देना मुश्किल है। यह शरीर आपका एक मिरेकल कर रहा है चौबीस घंटे। इतना बड़ा चमत्कार चौबीस घंटे साथ है, उसके प्रति कृतज्ञता नहीं है, ग्रेटीट्यूड नहीं है!

कभी आपने अपने शरीर को प्रेम किया है? कभी अपने हाथों को चूमा है? कभी अपनी आंखों को प्रेम किया है? कभी यह खयाल किया है कि क्या अदभुत घटित हो रहा है? शायद ही आपमें कोई हो, जिसने अपनी आंख को प्रेम किया हो, जिसने अपने हाथों को चूमा हो और जिसने कृतज्ञता अनुभव की हो कि यह अदभुत बात, यह अदभुत घटना घट रही है और हमारे बिलकुल बिना जाने। अपने ही हाथों को चूम कर देखें, एक अद्भुत शांति से आप भर जायेंगे।

ध्यान-सूत्र, प्रवचन 5

अपने प्रियजन के साथ एक प्रयोग

एक ईसाई फकीर संत लयोला ने एक छोटे से ध्यान के प्रयोग की बात कही है। वह ध्यान का प्रयोग कीमती है और चाहें तो आप कर सकते हैं और अनूठा है। जिस किसी व्यक्ति को आप बहुत प्रेम करते हों, उसके सामने बैठ जाएं। स्नान कर लें, जैसे मंदिर में प्रवेश करने जा रहे हों। द्वार-दरवाजे बंद कर लें, ताकि कोई आपको बाधा न दे। और एकटक दोनों व्यक्ति एक-दूसरे की आंख में झांकना शुरू कर दें। सिर्फ एक-दूसरे की आंख में झांकें, और सब भूल जाएं। सब तरफ से ध्यान हटा लें और एक-दूसरे की आंख में अपने को उंड़ेलना शुरू कर दें। चाहे आपका छोटा बच्चा ही हो; जिससे भी आपका लगाव हो।

लगाव हो तो अच्छा, क्योंकि जरा आसानी से आप भीतर प्रवेश कर सकेंगे। क्योंकि जिससे आपका लगाव न हो, उससे हटने का मन होता है। जिससे आपका लगाव हो, उसमें प्रवेश करने का मन होता है। हमारा प्रेम एक-दूसरे में प्रवेश करने की आकांक्षा ही है।

तो जिससे थोड़ा प्रेम हो, उसकी आंखों में झांकें, एकटक, और उससे भी कहें कि वह भी आंखों में झांके। और पूरी यह कोशिश करें कि सारी दुनिया मिट जाए। बस, वे दो आंखें रह जाएं और आप उसमें यात्रा पर निकल जाएं।

एक दो-चार दिन के ही प्रयोग से, एक आधा घंटा रोज करने से आप चकित हो जाएंगे। आपके सारे विचार खो जाएंगे। जो विचार आप लाख कोशिश करके बंद नहीं कर सके थे, वे बंद हो जाएंगे। और एक अनूठा अनुभव होगा। जैसे कि आप दूसरे व्यक्ति में सरक रहे हैं, आंखों के द्वारा उतर रहे हैं। आंखें जैसे रास्ता बन गईं।

अगर इस प्रयोग को आप जारी रखें, तो एक महीने, पंद्रह दिन के भीतर एक अनूठी प्रतीति किसी दिन होगी। और वह प्रतीति यह होगी कि आपको यह समझ में न आएगा कि वह जो दूसरे के भीतर बैठा है, वह आप हैं; या जो आपके भीतर बैठा है, वह आप हैं। शरीर भूल जाएंगे और दो चेतनाएं, घड़े हट जाएंगे और दो जल की धाराएं मिल जाएंगी।

और एक बार आपको यह खयाल में आ जाए कि दूसरे के भी भीतर जो बैठा है, वह ठीक मेरे ही जैसा चैतन्य है, मैं ही बैठा हूं, तब फिर आप हर दरवाजे पर झांक सकते हैं और हर दरवाजे के भीतर आप उसको ही छिपा हुआ पाएंगे। आपको पता लगेगा कि यही चैतन्य सभी तरफ बैठा हुआ है। इस चैतन्य की मौजूदगी ही परमात्मा की मौजूदगी का अनुभव है।

गीता-दर्शन, अध्याय 13, प्रवचन 1

आकाश को देखते-देखते उससे एक हो जायें

कभी जमीन पर लेट जाएं किसी बगीचे के एकांत में जाकर। आंखें न झपकें। पलकें खुली रखें, अपलक। आकाश को देखते रहें एकटक। बिना आंख झपके, सिर्फ विराट आकाश को देखते रहें थोड़ी देर। सब भूल जाएं। आकाश को देखते रहें। आंख बंद न करें, अपलक देखते रहें। आंसू बहें, बहने दें। आकाश को देखते रहें। थोड़ी ही देर में पाएंगे, भीतर भी आकाश समा गया।

आप एक अदभुत अनुभव से गुजरेंगे। जब बिना आंखें झपके आकाश को देखते रहेंगे, देखते रहेंगे, थोड़ी देर में आप पाएंगे, आपके भीतर भी आकाश है; बाहर भी आकाश है। और थोड़े गहरे देखते रहेंगे, तो पाएंगे कि भीतर और बाहर एक ही, आकाश ही आकाश है।

और जब दोनों तरफ आकाश होंगे, तो दोनों आकाश की वार्ता शुरू हो जाएगी, डायलाग शुरू हो जाएगा। इन ट्यून विद दि इनफिनिट। और तब एक सुर-संगम बजने लगेगा। दोनों के बीच एक संगीत का आदान-प्रदान शुरू हो जाएगा।

तब परम विश्राम का अनुभव होगा।

गीता-दर्शन, अध्याय 4, प्रवचन 8

पूरे शरीर को श्वास लेता महसूस करें

कभी दिन में पंद्रह मिनट लेट जाएं और अनुभव करें कि श्वास से ही नहीं, शरीर के रोएं-रोएं से श्वास ले रहे हैं। जरूर कुछ दिन प्रयोग करने पर अनुभव होना शुरू हो जाएगा कि श्वास रोएं-रोएं से आ रही है। पूरा शरीर तब जीवंत मालूम होगा। अभी पूरा शरीर जीवंत नहीं मालूम होता। सिर के आस-पास थोड़ी सी जीवंतता है; बाकी पूरा शरीर जड़ हो गया है।

पूरे शरीर में आप नहीं हैं, खोपड़ी के पास थोड़ी सी जगह में सीमित हो गए हैं। बाकी सब शरीर तो आप ढोते हैं, उसमें जीते नहीं। जिस दिन श्वास-श्वास का अनुभव होगा रोएं-रोएं से, उस दिन पता चलेगा, पूरा शरीर जीवित है।

जिस दिन आप पूरे शरीर से श्वास लेने में सक्षम हो जाएंगे, उस दिन जब हवा का झोंका आपके पास से निकलेगा, तो सिर्फ हवा का झोंका नहीं होगा, परमात्मा का झोंका भी होगा। और जब आपकी आंख के सामने एक फूल खिलेगा और हंसेगा, तो सिर्फ फूल नहीं खिलेगा, फूल से सारी प्रकृति खिलेगी और हंसेगी। और तब वह जो स्वल्पभाषी प्रकृति है, निसर्ग है, उसकी भाषा, उसकी कोड लैंग्वेज आपको समझ में आनी शुरू होगी।

ताओ उपनिषद, प्रवचन 49

किसी अजनबी को निष्काम नमस्कार

एक प्रयोग करके देखें। चौबीस घंटे में एकाध काम निष्काम करके देखें। पूरा तो करना मुश्किल है, एकाध काम। चौबीस घंटे में एक काम सिर्फ, निष्काम करके देखें। छोटा सा ही काम; ऐसा कि जिसका कोई बहुत अर्थ नहीं होता। रास्ते पर किसी को बिलकुल निष्काम नमस्कार करके देखें। इसमें तो कुछ खर्च नहीं होता! लेकिन लोग निष्काम नमस्कार तक नहीं कर सकते हैं!

नमस्कार तक में कामना होती है। मिनिस्टर है, तो नमस्कार हो जाती है! पता नहीं, कब काम पड़ जाए। मिनिस्टर नहीं रहा अब, एक्स हो गया, तो कोई उसकी तरफ देखता ही नहीं। वही नमस्कार करता है। वह इसलिए नमस्कार करता है कि अब फिर कभी न कभी काम पड़ सकता है।

कामना के बिना नमस्कार तक नहीं रही! कम से कम नमस्कार तो बिना कामना के करके देखें। और हैरान हो जाएंगे। अगर साधारण से जन को भी, राहगीर को भी, अपरिचित को भी, भिखारी को भी हाथ जोड़ कर नमस्कार कर ली, बिना कामना के, तो भीतर तत्काल पाएंगे कि आनंद की एक झलक आ गई। सिर्फ नमस्कार भी—कोई बड़ा कृत्य नहीं, कोई बड़ी डीड नहीं, कुछ नहीं—सिर्फ हाथ जोड़े निष्काम, और भीतर पाएंगे कि एक लहर शांति की दौड़ गई। एक अनुग्रह, एक ईश्वर की कृपा भीतर दौड़ गई।

और अगर अनुभव आने लगे, तो फिर बड़े काम में भी निष्काम होने की भावना जगने लगेगी। जब इतने छोटे काम में इतनी आनंद की पुलक पैदा होती है, तो जितना बड़ा काम होगा, उतनी बड़ी आनंद की पुलक पैदा होगी। फिर तो धीरे-धीरे पूरा जीवन निष्काम होता चला जाता है।

गीता-दर्शन, अध्याय 4, प्रवचन 13

जीवन में प्रेम के प्रयोग

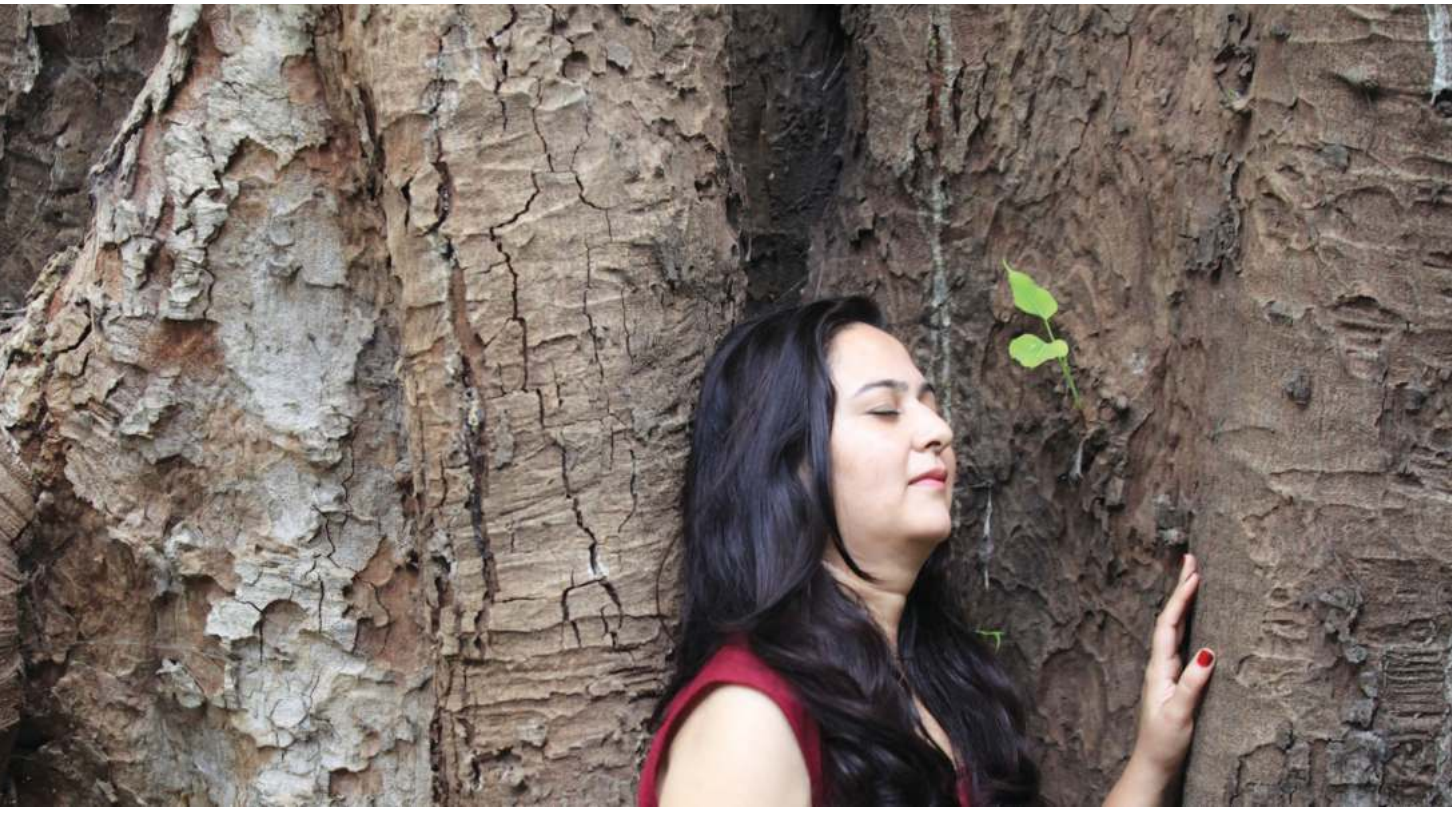

अगर वृक्ष को छुओ तो प्रेम से छुओ। कुछ भी तो जाता नहीं, कुछ भी तो खर्च नहीं होता। प्रेम से छुओ। कभी छोटे प्रयोग करके देखो। वृक्ष के पास बैठे हो, हाथ रखो वृक्ष पर और ऐसा भाव करो, जैसे वृक्ष से तुम्हारा बड़ा गहरा प्रेम है। वृक्ष एक मित्र है, तुम बहुत दिन बाद आए हो, वृक्ष से हाथ में हाथ लिए बैठे हो कि वृक्ष को आलिंगन करके छाती से लगा लो। और आंख बंद करके थोड़ी देर वृक्ष के साथ रह जाओ।

और देखो, क्या घटता है! तुम पाओगे, हृदय की धड़कन बदली, हृदय का गुण बदला, तुम मस्तिष्क से नीचे उतरे। क्योंकि वृक्ष के पास तो कोई मस्तिष्क नहीं है। उसके पास तो सिर्फ हृदय है। अगर तुमने थोड़ी उससे हृदय की बात की, थोड़ा हृदय का राग-रंग जोड़ा—वह बड़ा सरल है—वह जल्दी ही तुम्हारी तरफ प्रेम की किरणें फेंकने लगेगा। तुम्हारे हृदय ने अगर उसे पुकारा, तो वह तुम्हारे हृदय को पुकारेगा।

चट्टान को भी छुओ तो प्रेम से छुओ और तुम फर्क पाओगे। चट्टान को अगर तुम प्रेम से छुओगे तो लगेगा, चट्टान में भी एक ऊष्मा है, एक गरमी है। और अगर तुम मनुष्यों के हाथ के भी हाथ में लोगे और बिना प्रेम के लोगे तो पाओगे एक ठंडापन है, एक मुर्दापन है।

थोड़ा अपने प्रेम को फैलाओ। भोजन करो तो प्रेम से करो। क्योंकि भोजन को तुम अपने भीतर ले जा रहे हो। ले जाओ अहोभाव से। बड़े प्रेम से निमंत्रण दो।

स्नान करो तो जल के साथ प्रेम से भरो। क्योंकि जल है तुम्हारा शरीर। तुम्हारे शरीर में निन्यानबे प्रतिशत तो जल है। तुम सागर से आए हो। सारा जीवन सागर से आया है, सागर के पास बैठो, तो सागर की तरफ बड़े प्रेम से देखो। जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को देखता है। तब तुम लहरों में आमंत्रण पाओगे। और जल्दी ही पाओगे कि तुम्हारा सिर तो अलग हो गया, बीच से हट गया, हृदय का तार जुड़ गया।

पहाड़ पर जाओ। हरियाली को देख कर प्रसन्न होते हो, नाचो। आकाश को देखो, चांद-तारों को! तुम सारे अस्तित्व से जुड़े हो! यह प्रेम का प्रयोग तुम बढ़ाते चले गये तो एक दिन पाओगे कि पूरा अस्तित्व तुम पर प्रेम की वर्षा कर रहा है।

पिव पिव लागी प्यास, प्रवचन 8

वृक्ष से, पृथ्वी से संदेश लें

अगर ध्यान तुम्हारा सधता जाए और ऐसी घड़ी आ जाए, जब तुम अनुभव कर सको कि अब कोई भी विचार नहीं है, तो थोड़ा प्रयोग करना। थोड़ा प्रयोग करना। ऐसे ध्यान की अवस्था में किसी वृक्ष के नीचे कुछ दिन प्रयोग करना। किसी भी वृक्ष के नीचे प्रयोग हो सकता है। तुम्हारा ध्यान जम गया हो, ठीक आ गया हो, तो फिर तुम चले जाओ और रात बैठे रहो वृक्ष के नीचे, ध्यान करते हुए। और जब तुम्हें लगे कि तुम बिलकुल शून्य हो गए हो, तब तुम वृक्ष को सिर्फ इतना कह दो, कि तुझे कुछ मेरे लिए कहना हो तो कह दे। और तब तुम मौन बैठ कर प्रतीक्षा करते रहो। तुम हैरान हो जाओगे कि वृक्ष तुमसे कुछ कहेगा। और कुछ ऐसा कहेगा जो तुम्हारे पूरे जीवन को रूपांतरित कर दे।

वृक्ष कुछ संजोए हुए है, कुछ संगृहीत किए हुए है, और केवल उन्हीं के लिए संजोए हुए है, जो पूछने की सामर्थ्य रखते हैं। वे पूछेंगे तो उनको उत्तर मिल जाएगा। लेकिन उतनी दूर जाने की भी कोई जरूरत नहीं है। यह आकाश सारे बुद्धों को अपने में समाए हुए है। इस पृथ्वी पर सारे महावीर और सारे जीसस और सारे कृष्ण चले और उठे हैं। इस पृथ्वी से ही पूछ सकते हो।

पूरी तरह ध्यान की अवस्था में पृथ्वी पर नग्न लेट जाओ, जैसे कोई छोटा बच्चा मां की छाती पर लेटा हो। और ऐसा ही खयाल कर लो कि यह पूरी पृथ्वी तुम्हारी मां है, तुम उसके स्तन अपने हाथ में लिए हुए उसकी छाती पर लेटे हुए हो। बिलकुल शांत और शून्य हो जाओ। और जब तुम्हें लगे कि अब तुम्हारे शरीर की मिट्टी में और उसकी मिट्टी में कोई फर्क न रहा, दोनों एक हो गई हैं, और तुम्हारे भीतर शून्य विराजमान हो गया है, तब तुम पूछ लो। यह पृथ्वी अगर तुम्हारे लिए कोई संदेश रखे है, तो तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा। और तुम पाओगे कि ऐसा बलशाली संदेश तुमने कभी कहीं से नहीं पाया। उसके पाने के बाद तुम वही न रह जाओगे, जो तुम थे। और तब इस प्रक्रिया में गहरा उतरा जा सकता है। और इस तरह से बहुत सी चीजें उपलब्ध की जा सकती हैं, जो वैसे खो गई हैं।

साधना-सूत्र, प्रवचन 15

देखें कितने मिनट आप दुखी रह सकते हैं

जब तुम दुखी हो तो एक प्रयोग करो : दुखी होओ; दुख से लड़ो मत। यह प्रयोग करो; यह अदभुत विधि है। जब दुख आए और तुम दुखी हो जाओ, तुम्हें पीड़ा अनुभव हो; तो तुम अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लो और दुखी हो जाओ। अब और क्या कर सकते हो? तुम दुखी हो, तो तुम दुखी हो। अब पूरी तरह दुखी हो जाओ। और अचानक तुम्हें दुख का बोध होगा।

कुछ मत करो। दुख कैसे पैदा हुआ, इसका विश्लेषण मत करो। और इसकी भी फिक्र मत करो कि इसके क्या-क्या परिणाम होंगे। परिणाम जब आएंगे तब उन्हें देख लेना। जल्दी क्या है? अभी दुखी होओ, सिर्फ दुखी होओ। और उसे बदलने की चेष्टा मत करो।

इस तरह प्रयोग करो : देखो कि कितने मिनट तक तुम दुखी रह सकते हो। तब तुम्हें पूरी चीज पर हंसी आएगी; पूरी चीज मूढ़तापूर्ण मालूम पड़ेगी। क्योंकि अगर तुम समग्रतः दुखी हो जाओ तो अचानक तुम्हारा केंद्र दुख के पार हो जाएगा। वह केंद्र कभी दुखी नहीं हो सकता; यह असंभव है। अगर तुम दुख के साथ बने रहे तो दुख पृष्ठभूमि बन जाता है और तुम्हारा केंद्र, जो कभी दुखी नहीं हो सकता, अचानक उभर आता है। और तब तुम दुखी हो और दुखी नहीं भी हो—अब तुम दुख को दुख से विसर्जित कर रहे हो।

दुख ऐसे ही विलीन हो जाएगा जैसे आकाश से बादल विलीन हो जाते हैं और आकाश खुल जाता है। तब तुम हंसोगे। और तुमने कुछ किया भी नहीं।

डैंग डैंग डोको डैंग

जब अवसर मिले, तल्लीन होकर गायें

सब तरफ से अस्तित्व एक सेलीब्रेशन है, एक उत्सव है। पक्षी गा रहे हैं—सुबह होते ही गीत पक्षियों का शुरू हो जाता है। हवाओं के झोंके वृक्षों से टकराते हैं और गाते हैं। पहाड़ों से झरने गिरते हैं और नाद उत्पन्न होता है। आकाश में बादल आते हैं और तुमुल-उदघोष होता है। नदियां बहती हैं। सागर की तरंगें तटों से टकराती हैं। अगर जीवन को चारों तरफ गौर से तुम देखो और सुनो, तो तुम्हें पूरा अस्तित्व गाता हुआ मालूम पड़ेगा।

अगर जीवन इतना गीत से भरा है, तो इस गीत के पीछे परमात्मा का हाथ होगा। और इस गीत में छिपा हुआ कहीं न कहीं परमात्मा है। अगर हम भी गा सकें, अगर हम भी इस गीत में लीन हो सकें, तो धागा हाथ में आ जाएगा। गीत में लीन होना धागा है। जब कभी तुम गाते हो, तब एक मस्ती पकड़ने लगती है। तब एक नशा छाने लगता है।

गाना नहीं जानते, कोई चिंता नहीं, गाओ। जब अवसर मिल जाये, गाओ। गीत की असली सार्थकता उसके माधुर्य में नहीं, उसकी लीनता में है। तुम उसमें लीन हो सकते हो। तुम उसमें इतने लीन हो सकते हो कि तुम बिलकुल मिट ही जाओ। तुम बचो ही न और गीत ही बचे। गुनगुनाहट रह जाए और कर्ता खो जाए। गीत ही बचे और गायक समाप्त हो जाए। यह हो सकता है। और यह सरलतम है। पक्षी गा लेते हैं, पौधे गुनगुनाते हैं, झरने गाते हैं। तुम इतने असमर्थ हो क्या कि झरनों का मुकाबला भी न कर सको? कि पक्षियों का मुकाबला भी न कर सको? कि वृक्षों से भी होड़ न ले सको?

एक ओंकार सतनाम

शांत व प्रफुल्ल क्षणों का स्मरण करें

बहुत सा समय चौबीस घंटे का हमारे पास व्यर्थ होता है, जिसका हम कोई उपयोग नहीं करते। उस व्यर्थ के समय में अगर ध्यान की स्मृति को दोहराते हैं, तो बहुत अंतर पड़ेगा।

इसको कभी इस तरह खयाल करें। अगर आपको दो वर्ष पहले किसी व्यक्ति ने गाली दी थी, दो वर्ष पहले आपका किसी ने अपमान किया था, दो वर्ष पहले कहीं आपके साथ कोई दुर्घटना घटी थी, अगर आप आज भी उसे स्मरण करने बैठेंगे, तो उस पूरी घटना को स्मरण करते-करते आप यह भी हैरान हो जाएंगे कि घटना को स्मरण करते-करते आपके शरीर की और चित्त की अवस्था भी उसी छाप को ले लेगी, जो दो वर्ष पहले घटित हुआ होगा। अगर दो वर्ष पहले आपका कोई भारी अपमान हुआ था, आप आज बैठ कर अगर उसका स्मरण करेंगे कि वह घटना कैसे घटी थी और कैसे अपमान हुआ था, तो आप स्मरण करते-करते हैरान होंगे कि आपका शरीर और आपका चित्त उसी अवस्था में पुनः पहुंच गया है और आप जैसे फिर से अपमान को अनुभव कर रहे हैं।

हमारे चित्त में संग्रह है और वह विलीन नहीं होता। जो भी अनुभव होते हैं, वे संगृहीत हो जाते हैं। अगर उनकी स्मृति को फिर से पुकारा जाए, तो वे अनुभव जगाए जा सकते हैं और हम दुबारा उन्हीं अनुभूतियों में प्रवेश पा सकते हैं। मनुष्य के मन से कोई भी स्मृति नष्ट नहीं होती है।

तो अगर आज सुबह आपको ध्यान में अच्छा लगा हो, तो दिन में दस-पांच बार उसका पुनर्स्मरण बहुत महत्वपूर्ण होगा। उस भांति वह स्मृति गहरी होगी। और बार-बार स्मरण आ जाने से वह चित्त के स्थायी स्वभाव का हिस्सा बनने लगेगी।

विधायक अनुभूतियों का स्मरण बहुत बहुमूल्य है। उन-उन अनुभूतियों को निरंतर स्मरण करने से दो बातें होंगी। सबसे महत्वपूर्ण तो यह होगा कि अगर आप विधायक अनुभूतियों को स्मरण करते हैं, तो उन अनुभूतियों के वापस पैदा होने की संभावना आपके भीतर बढ़ जाएगी। जो आदमी घृणा की बातों को बार-बार याद करता हो, बहुत संभावना है, आज भी घृणा की कोई घटना उससे घटेगी। जो आदमी उदासी की बातों को बार-बार स्मरण करता हो, बहुत संभव है, आज वह फिर उदास होगा। क्योंकि उसके एक तरह के झुकाव पैदा हो जाते हैं और वही बातें उसमें पुनरुक्त हो जाती हैं। ये, ये जो भाव हैं, स्थायी बन जाते हैं और जीवन में उन-उन भावों का बार-बार पैदा हो जाना आसान हो जाता है।

इसको अपने भीतर विचार करें कि आप किस तरह के भावों को स्मरण करने के आदी हैं। हर आदमी स्मरण करता है। किस तरह के भावों को आप स्मरण करने के आदी हैं? और यह स्मरण रखें कि अतीत के जिन भावों को आप स्मरण करते हैं, भविष्य में आप उन्हीं भावों को, बीजों को बो रहे हैं और उनकी फसल को काटेंगे। अतीत का स्मरण भविष्य के लिए रास्ता बन जाता है।

स्मरणपूर्वक, जो व्यर्थ है, जिसका कोई उपयोग नहीं है, उसे याद न करें। उसका कोई मूल्य नहीं है। अगर उसका स्मरण भी आ जाए, तो रुकें और उस स्मरण को कहें कि बाहर हो जाओ, तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। कांटों को भूल जाएं और फूलों को स्मरण रखें। कांटे जरूर बहुत हैं, लेकिन फूल भी हैं। जो फूलों को स्मरण रखेगा, उसके जीवन में कांटे क्षीण होते जाएंगे और फूल बढ़ जाएंगे। और जो कांटों को स्मरण रखेगा, उसके जीवन में हो सकता है, फूल विलीन हो जाएं और केवल कांटे रह जाएं।

हम क्या स्मरण करते हैं, वही हम बनते चले जाते हैं। जिसका हम स्मरण करते हैं, वही हम हो जाते हैं। जिसका हम निरंतर विचार करते हैं, वह विचार हमें परिवर्तित कर देता है और हमारा प्राण हो जाता है। इसलिए शुभ, सद, जो भी आपको श्रेष्ठ मालूम पड़े, उसे स्मरण करें। और जीवन में—इतना दरिद्र जीवन कोई भी नहीं है कि उसके जीवन में कोई शांति के, आनंद के, सौंदर्य के, प्रेम के क्षण न घटित हुए हों। और अगर आप उनके स्मरण में समर्थ हो गए, तो यह भी हो सकता है कि आपके चारों तरफ अंधकार हो, लेकिन आपकी स्मृति में प्रकाश हो और इसलिए चारों तरफ का अंधकार भी आपको दिखाई न पड़े। यह भी हो सकता है, आपके चारों तरफ दुख हो, लेकिन आपके भीतर कोई प्रेम की, कोई सौंदर्य की, कोई शांति की अनुभूति हो और आपको चारों तरफ का दुख भी दिखाई न पड़े। यह संभव है, यह संभव है कि बिलकुल कांटों के बीच में कोई व्यक्ति फूलों में हो। इसके विपरीत भी संभव है। और यह हमारे ऊपर निर्भर है।

ध्यान-सूत्र, प्रवचन 3

साठ के दशक में जब ओशो जबलपुर से मुंबई की यात्राएं किया करते थे, तब वहां उनके जो सार्वजनिक प्रवचन होते या कुछ मित्रों के साथ अंतरंग गोष्ठियां होतीं वे सब रिकार्ड की जातीं व बाद में पुस्तकों के रूप में उपलब्ध हुईं। लेकिन जो निजी वार्ताएं होतीं, वे रिकर्ड नहीं की जाती थीं। उस समय यदि कोई ऐसे मित्र वहां उपस्थित होते जो वार्ता का हिस्सा तो न होते पर सुन रहे होते, तो वे चुपचाप वार्ता के कुछ अंश लिखकर ज्यों का त्यों नोट कर लेते—पूरी वार्ता को नोट कर पाना संभव नहीं था क्योंकि ओशो धाराप्रवाह बोलते रहते। नोट किया हुआ सबकुछ जीवन जागृति केंद्र के पास जमा होता रहा। ओशो के कहने पर इन वचनांशों की एक पुस्तक तैयार की गयी—नये संकेत। यह पुस्तक अब प्रकाशन में नहीं है। यैस ओशो के पाठकों के लिये यह पुस्तक हम यहां धारावाहिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं।

मैं एक बार एक ऐसे मकान में ठहरा था जिसमें कि कोई खिड़कियां ही नहीं थीं। बहुत पुराना मकान था। गृहपति से मैंने कहाः 'आपका मकान तो मनुष्य के मन जैसा है। न इसमें कोई खिड़कियां हैं, न उसमें प्रकाश के आने के लिए, खुले आकाश के प्रवेश के लिए, ताजी हवाओं के लिए आपने कोई सुविधा ही नहीं रखी है।' वह बोलेः 'मकान बहुत पुराना है।' मैंने कहाः 'ऐसा ही मनुष्य का मन भी बहुत पुराना है। असल में पुराना होने से ही जीवन के प्रति खुलापन बंद हो जाता है। बंद होते जाना मृत्यु है। वह सदा के लिए कब्र में होने की तैयारी है। फिर भी आप चाहें तो क्या दीवालें तोड़ कर आकाश से संबंधित होने का कोई मार्ग नहीं निकाल सकते? क्या यह उचित नहीं कि जो दीवालों में है, वह उससे संबंधित है, जो कि दीवालों के बाहर है? क्या दीवालें इतनी बहुमुल्य हैं कि उन्हें तोड़ कर आकाश को पाना महंगा होगा? वस्तुतः तो दीवारों से घिरा व्यक्ति स्वयं के जीवन के वास्तविक क्षितिज को ही नहीं जान पाता। पुरानी दीवालों के कारण आकाश से टूटना कितना घातक है? पुराने मन के कारण आत्मा से टूटना कितना आत्मघातक है?' ✡

एक संन्यासी आए थे। वे कहते थेः 'मैं अमृत का विचार करता हूं।' मैंने उनसे कहाः 'अमृत का विचार संभव ही नहीं, क्योंकि जो विचार में आ सकता है, वह अमृत नहीं हो सकता। विचार है मर्त्य, उसका अमृत से संपर्क ही कैसे होगा? अच्छा हो कि आप मृत्यु का पूर्ण साक्षात्कार ही आत्मा को अमृत में ले जाता है। लेकिन हम तो मृत्यु से भय खाते हैं, इसीलिए अमृत का विचार करते हैं। अमृत का विचार क्या मृत्यु से भयभीत है, क्या वह अमृत की उपलब्ध में समर्थ हो सकता है? मित्र, वस्तुतः तो मृत्यु में भय नहीं है, भय में ही मृत्यु है मृत्यु तो है अपरिचित चाहिए। अज्ञात का भय नहीं होता है। भय होता है ज्ञात के छूटने का। मृत्यु का भय मृत्यु का नहीं, वरन् जिसे हम जीवन जानते और मानते हैं, उसके टूटने का भय है। और भय घनीभूत होकर मृत्यु बन जाता है। इसीलिए मैंने कहा कि मृत्यु को खोजें। वह खोज बहुत फलदायी है क्योंकि उस खोज के अंत में मृत्यु नहीं पाई जाती और जो पाया जाता है,वही अमृत है।'✡

मैं किसी भिन्न जगत में नहीं हूं। उसी जगत में हूं, जहां सब हैं। किंतु जीवन को देखने की दृष्टि की निश्चय ही आमूलतः बदल गई है। और उस दृष्टि का बदल जाना कैसे कि इस जगत का ही बदल जाना है। क्योंकि हम वही देखते हैं जो कि हम हैं। हमारी दृष्टि ही हमारा जगत और जीवन है। जैसी दृष्टि है, वैसी ही सृष्टि हो जाती है। जीवन दुख मालूम होता हो तो जानें कि सृष्टि दुख की है, और जीवन को नहीं, दृष्टि को बदलने में संलग्न हो जावें। दृष्टि को बदलने का अर्थ है स्वयं को बदलना। स्वयं पर ही निर्भर है। स्वयं में ही नरक है और स्वयं में ही स्वर्ग। स्वयं में ही संसार है और स्वयं में ही मोक्ष। जो है, वह तो सदा वही है किंतु एक दृष्टि उसे बंधन बना देती है और दूसरी मुक्ति। अहंकार के बिंदु से देखने पर जीवन नरक हो जाता है। क्योंकि वह दृष्टि सर्वविरोधी है। सर्व सत्ता से भिन्न और विरोध में होकर ही तो मैं 'मैं' हो सकता हूं। मैं होने की चेष्टा सर्व से संघर्ष और प्रतिरोध की साधना है। ऐसी चेष्टा से ही चिंता फलित होती है और संताप का जन्म होता है। इससे ही मिटने का और मृत्यु का भय पैदा होता है। फिर जो असत्य है और असंभव है उसके लिए प्रयासरत होने से दुख आता हो तो आश्चर्य भी नहीं है। अहंकार-शून्यता का भी एक बिंदु है। जगत को उस बिंदु से भी देखा जा सकता है। 'मैं' सर्व से विरोध है, संघर्ष है। 'न मैं' सर्व से सम्मिलन है। वह सम्मिलन सत्य है क्योंकि सत्ता अखंड और अविभाज्य है। सब खंड़ और विभाजन मनुष्य कल्पित हैं। मैं हूं, तो खंड में हूं। मैं नहीं हूं, तो अखंड में हूं। और खंड में होना बंधन है, अखंड में होना मुक्ति है। मैं हूं, तो दुख में हूं क्योंकि वह होना ही सतत द्वंद्व है, युद्ध है, संघर्ष है। मैं नहीं हूं, तो आनंद में हूं क्योंकि न हो जाना अनंत शांति है। मैं से मुक्त होते ही चेतना परंपरा से मुक्त हो जाती है। मैं से वियोग, परमात्मा से योग है। ✡

क्रमशः

प्रश्न हैं अनेक पर उत्तर बस एक

ओशो और उनके श्रोताओं के बीच जो प्रश्न और उत्तर हैं वह विद्वानों की चर्चा नहीं है। वह मन और अमन के बीच का प्रतिसंवेदन है। ओशो प्रश्न का जवाब इसलिए देते हैं ताकि पूछते-पूछते पूछने वाला इतना थक जाए कि उसका पूछना ही गिर जाये।

आधुनिक मनुष्य के वाचाल मन को शांत करने के लिए ओशो ने तरह-तरह के प्रयोग किये। उनमें से एक है प्रश्नोत्तरी। उनके व्याख्यानों का लगभग पचास प्रतिशत हिस्सा प्रश्नोत्तरी का है। विषय चाहे भारतीय संतों का हो या योग या तंत्र का, वे हर दूसरे दिन श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर देते थे। वे प्रश्नों को न केवल आमंत्रित करते, कई प्रश्न श्रोताओं की ओर से खुद बनाकर उसका खुद ही सार्वजनिक उत्तर देते थे। एक अनुमान है कि पैंतीस साल के दौरान उन्होंने पंद्रह हजार प्रश्नों के उत्तर दिये। मानव मन संभवतः जो भी प्रश्न पूछ सकता है उसका उत्तर उन्होंने दे रखा है।

क्यों, प्रश्नों पर उनका इतना जोर क्यों है? इसका कारण भी उन्होंने बताया है। आज का मनुष्य बुद्धिजीवि है। उसका मन तर्क और शंका से भरा हुआ है। और इसीलिए हजारों प्रश्न उसके मस्तिष्क में मक्खियों की तरह भिनभिनाते रहते हैं। जरूरी नहीं कि ये प्रश्न सार्थक हों, अधिकतर निरर्थक ही होते हैं लेकिन जब तक उनका उत्तर न दिया जाये तब तक वे उसी तरह भिनभिनाते रहेंगे और उसके मन को शांत नहीं होने देंगे।

ओशो और उनके श्रोताओं के बीच जो प्रश्न और उत्तर हैं वह विद्वानों की चर्चा नहीं है। वह मन और अमन के बीच का प्रतिसंवेदन है। ओशो प्रश्न का जवाब इसलिए देते हैं ताकि पूछते-पूछते पूछने वाला इतना थक जाए कि उसका पूछना ही गिर जाये।

शाब्दिक उत्तर देकर उत्तर मिलते भी नहीं। प्रश्नों का स्वभाव खुजली जैसा है : जितना खुजलाओ उतनी बढ़ती जाती है। प्रश्न भी दिमाग की खुजली हैं; जितना पूछो उतने निकलते जाते हैं। प्रश्न का एक उत्तर और दस प्रश्नों को जन्म देता है। इसी में उलझे रहे तो यह अंतहीन भटकन है। इसलिए पंडितों के बीच इतना विवाद छिड़ता है, घनघोर चर्चाएं होती हैं लेकिन अंत में कुछ भी हल नहीं होता। मूल प्रश्न वहीं का वहीं रहता है।

इधर झेन गुरुओं ने शिष्यों के प्रश्नालु मन को समाप्त करने के बड़े अनूठे प्रयोग किये हैं।

एक दिन तोकुसान रियुतान के पास आया और उसने कई सवाल पूछे।

गुरु ने कहा, 'रात सर्द हो रही है। तुम विश्राम क्यों नही करते?'

तोकुसान ने जाने के लिये परदा उठाया, और बाहर झांककर कहा, 'बाहर घना अंधेरा है।'

रियुतान ने एक मोमबत्ती जलाकर तोकुसान को दी ताकि उसे रास्ता दिखाई दे। लेकिन जैसे ही तोकुसान ने मोमबत्ती हाथ में ली, रियुतान ने फूंक मारकर बुझा दी।

उस क्षण तोकुसान का मस्तिष्क खुल गया।

मस्तिष्क में प्रश्न ही प्रश्न होते हैं और कोई उत्तर नहीं होता। और हृदय में सिर्फ उत्तर होता है, कोई प्रश्न नहीं उठता। ओशो के उत्तर यह प्रयास हैं कि कैसे मन में उलझी हुई ऊर्जा हृदय में गिर जाये जहां सिर्फ उत्तर की शांत झील है। इसलिए कई दफा वे प्रश्नकर्ता की ऐसी ठुकाई करते हैं कि बाकी सुननेवाले भी थर्रा जाते हैं। यह उनकी शल्य चिकित्सा है, मानसिक सर्जरी है। उद्देश्य यही है कि मन के टुकड़े-टुकड़े हो जायें और वह पिघलकर बह जाये।

जो अस्तित्वगत प्रश्न हैं उनका उत्तर एक ही होता है : हम खुद। खुद जीकर उन प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं। जैसे हम किसी से पूछें, 'प्रेम क्या है?' अब इसका उत्तर किसी और से कैसे मिलेगा? और दूसरे लोग उत्तर देकर भी क्या दे पायेंगे? इसका उत्तर एक ही है : खुद प्रेम करो और जान जाओ।

हमारे सभी प्रश्नों का सार निचोड़ यही है।

पुनः एक झेन कथा याद आ गई :

तोझान अपने खेत में कपास तौल रहा था। तोझान ख्यातिनाम बुद्ध पुरुष था। रिको, एक दार्शनिक, उसके पास गया और उसने पूछा, 'बुद्ध क्या है?'

तोझान ने बिना ऊपर निगाह किये कहा, 'पांच किलो कपास।'

अब इसका मतलब क्या हुआ? यह तो दो पागलों का संवाद लगता है। लेकिन इसका मर्म यह है कि स्वयं बुद्ध सामने खड़ा है और उसी से पूछ रहे हो, बुद्ध क्या है।

तोझान का उत्तर बौद्धिक नहीं था, जीवंत था।

'मैं जिस संपूर्णता से कपास तौल रहा हू

न पानी कहीं, न चांद कहीं

दुनिया की कोई भी पुस्तक हो, हम सब उसके चिन्तन का दो बूंद पानी तो उससे जरूर लेते हैं, और इस तरह से अपने मन-मस्तक की मटकी को भरते चले जाते हैं और फिर जब उस पानी में चांद की परछाई दिखती है, हमें पानी से मोह हो आता है।

चिउनो एक जैन संन्यासिन थी, जो बरसों ज्ञान को अर्जित करती रही, उस पानी से भरी मटकी को उठाकर चलती रही, और उसमें चांद की परछाई देखती रही...

और फिर जिस तरह गौतम एक वृक्ष के नीचे बरसों-बरसों बैठे रहे, और एक दिन अचानक अंतर की रोशनी का रहस्य पा लिया, कुछ उसी तरह चिउनो की मटकी अचानक टूट गई, पानी बह गया, और उसने देखा—न पानी कहीं, न चांद कहीं। तो उसने सर उठाकर आसमान के चांद का सीधा दीदार पा लिया।

पुस्तकों से जो भी अर्जित किया जाता है, और सहेज लिया जाता है, वह किसी दूसरे का होता है, वह कभी अपना पता नहीं देता। अपना पता तो अपने अनुभव से पाना होता है...

इसी चिउनो की बात करते हुए ओशो हर पुस्तक को एक दीवार कहते हैं, जिसे खटखटाते हुए लोग हैरान से होते हैं कि उन्हें भीतर जाने का रास्ता क्यों नहीं मिलता। द्वार तो अपने अंतर में होता है, जो खुला होता है। लेकिन हम द्वार की ओर नहीं जाते, हम बाहर दीवारों पर दस्तक देते हैं...

कह सकती हू

सकते हैं—'अरे यह मैं जो कुछ तुमसे कह रहा हू तुम्हारे मन-मस्तक को खाली करने के लिए कह रहा हू

कर दो। देखो, यह मत करना कि मैंने जो कहा, तुम उसे भी जमा कर लो, और तुम्हारा मस्तक और भारी हो जाए...।'

कह सकती हू

का मर्म जान पाए है, कह पाए हैं—'यह जितनी भी पुस्तकें हैं, जितने भी पीर और पैगम्बर हैं, सब अंगुलियां है—जो मूल शक्ति की ओर किया जाने वाला संकेत है। संकेत पाकर तो आगे जाना होता है, और अंगुलियों को पीछे छोड़ जाना होता है। लेकिन आप लोग तो अंगुलियां पकड़कर बैठ गए, और अंगुलियों को पूजने लगे...'

कहना चाहू

लिखा, 'परछाइयों को पकड़ने वालो! छाती में जलती हुई आग की परछाई नहीं होती। भीतर में जलती हुई आग तो एक जिज्ञासा है। परछाइयां तो छूट चुकी, अंगुलियां भी छूट गईं और अब 'न पानी कहीं, न चांद कहीं,' सी हालत है। अन्तर अनुभव का चांद मैं कब और कितना भर देख पाऊंगी, यह वक्त जानता है, मैं जानती।'

अमृता प्रीतम

यारी साहिब की रत्नावलि

यारी साहिब की कहानी दिल्ली से ही शुरू होती है, दिल्ली में ही परवान चढ़ती है, और पुरानी दिल्ली की तंग घुमावदार गलियों में ही कहीं गुम हो जाती है—कहीं दूर के खलिहानों में फिर से पैदा होने के लिए। लेकिन उनकी यह कहानी अधूरी होगी अगर उनके जन्म से सत्तर बरस पहले शुरू हुई एक दूसरी कहानी न कह ली जाए। वह कहानी भी दिल्ली में ही शुरू होती है और दिल्ली में ही खुद को पोंछकर पीछे खाली पन्ने छोड़ जाती है।

बात सन 1542 की है। इससे पीछे बीते सोलह बरस में दिल्ली ने बहुत से उतार-चढ़ाव देखे थे। खिलजियों से लेकर तुगलकों, सईदों और लोदियों तक 320 साल दिल्ली किसी न किसी सल्तनत का केंद्र रही थी—रुबाब था, रुतबा था। फिर 1526 में उज़बेकिस्तान का एक जवान लड़ाका हिंदुस्तान आया—नाम था बाबर। पानीपत की जबरदस्त लड़ाई में दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी को हराकर वह कई सूबों तक फैली हुई दिल्ली सल्तनत पर काबिज़ हो गया और उसने मुगल साम्राज्य की स्थापना की। फिर चित्तौड़ के राणा सांगा के नेतृत्व में लड़ने आई पूरे राजपूताना की फौजों को हराकर उसने लगभग आधे हिंदुस्तान पर मुगल साम्राज्य का परचम फहरा दिया—लेकिन दिल्ली को अपनी राजधानी न बनाकर, उसने आगरा को बनाया। दिल्ली का रुतबा फीका पड़ने लगा। फिर चार ही साल में बाबर मारा गया और 1530 में उसका बेटा हिमायूं बादशाह बना। उसने दिल्ली को राजधानी बनाने की संभावनाएं तो टटोलीं, लेकिन आगरा में ही बना रहा। 1540 में बकसर के सुलतान शेरशाह सूरी ने हुमायूं को शिकस्त दे दी और उसे हिंदुस्तान से भागकर पर्शिया चले जाना पड़ा—जहां उसे पंद्रह साल इंतजार करना था, हिंदुस्तान लौटकर अपनी बादशाहत पर फिर से काबिज होने के लिए। अब दिल्ली सल्तनत पर शेरशाह सूरी का कब्जा था, और राजधानी भी दिल्ली हो गई। एक बार फिर से दिल्ली चमक उठी।

दिल्ली की इसी चमक के बीच, सूरियों के फैले हुए शाही खानदान में 1942 की एक सर्द रात एक बेटी ने जन्म लिया। उसके वालिद ने सूफी संत मीरां साहिब अजमेरी का रहमो-करम मानते हुए, उसका नाम रखा—मीरां। उन्हें शायद पता नहीं था कि चालीस-बयालिस बरस पहले राजपूताना के एक राजा से भी यही गलती हुई थी और मीरां साहिब के नाम पर अपनी बेटी का नाम रख दिया था। वह चित्तौड़गढ़ की रानी तो बनी, लेकिन महल उसे भाये नहीं और सड़कों पर उतर गई—जहां वह मदहोश नाचने लगी। अगर मीरां के वालिद को यह पता होता तो शायद कभी भी मीरां साहिब अजमेरी के नाम का साया अपनी बेटी पर पड़ने न देते। लेकिन यह भी हो सकता है कि शायद इसीलिए उन्होंने अपनी बेटी का नाम मीरां रखा क्योंकि वह उस जोगन से प्रभावित थे जो कभी चित्तौड़ की रानी हुआ करती थी। वह अभी भी जिंदा थी, और यह हो नहीं सकता कि उसके चरचे उन्होंने सुने न हों।

या फिर यह कायनात की साजिश थी कि एक मीरा के जाने से पहले दूसरी तैयार होनी शुरू हो जाए। शायद कायनात ने मीरा में जो निवेश किया था, उसे अभी और खर्च करना था।

मीरां अपने वालिदान की इकलौती औलाद थी, सो उनकी बहुत लाड़ली थी। बड़े नाज़ों से पल रही थी। जमीन पर उसके पांव नहीं पड़ने दिए जाते थे—पड़ते भी, तो सिर्फ उसके छोटे-छोटे पांवों के पाजेब की रुनन-झुनन गूंजती। देखते-देखते वह पांच बरस की हो गई। साल 1547 का था—वह साल, जब कृष्ण वाली मीरा दुनिया की आंखों से ओझल हुई।

उसी साल मीरां के वालिद एक लड़ाई में गए और वापस नहीं लौटे। कई दिन बाद बस उनकी लाश लौटी। मीरां को समझ नहीं आया कि वह उठते क्यों नहीं। बहुत लोबी कि 'अब्बा जागो, अब्बा जागो।' पर वह जाग सकते तो उठते न। मीरां को बताया गया कि अब्बा अल्लाह के पास चले गए हैं, तो वह मां से बोली कि चलो हम भी अल्लाह के पास चलते हैं। मां ने कहा कि बेटी ऐसी बात नहीं करते। मीरां ने पूछा—अल्लाह के पास जाना गलत बात होती है क्या? मां कोई उत्तर नहीं दे सकी—और मीरां ने वह प्रश्न छोड़ा नहीं। वह सबसे सवाल करती, लेकिन जवाब कोई दे न पाता।

एक दिन मीरां अपनी हवेली की सीढ़ियों पर गुमसुम बैठी थी कि उसने देखा गली से कोई वृद्ध जोगी गुजर रहे हैं। कई लोग उन्हें झुक-झुक कर नमस्कार कर रहे थे, उनके चरण छू रहे थे। सीढ़ियों के नीचे ही एक आदमी उन जोगी की ओर देखते हुए हाथ जोड़े खड़ा था। मीरां नीचे उतरी और जाकर उस आदमी से पूछा कि 'यह जोगी कौन हैं?' तो वह बोला—यह मायानंद महाराज हैं, परमज्ञानी हैं।

'परमज्ञानी क्या होता है?' मीरां ने पूछा।

'परमज्ञानी यानि जो सब जानता है,' वह आदमी बोला।

मीरां तीर की तरह दौड़ती हुई मायानंद के पास पहुंची, और उनका दोशाला खींचते हुए बोली, 'अल्लाह के पास कैसे जाते हैं?'

मायानंद ने नीचे देखा तो उनकी नजर सीधी उस बच्ची की आंखों पर पड़ी। उन आंखों में जो उन्हें दिखाई दिया, वही तो वह लोगों में खोजते फिरते थे—कि वह बीज दिखाई दे जाए, तो उसे सींचा जा सके।

मायानंद रामानंद के बाद की दूसरी पीढ़ी के संबुद्ध थे—वही रामानंद, जो कबीर और रैदास के गुरु थे।

उन्हें घेरे खड़े लोग तब स्तब्ध रह गए जब मायानंद घुटने टिका कर बच्ची के सामने बैठ गए। वह चाहते थे उनकी और बच्ची की आंखें ठीक आमने-सामने हों। उन्होंने मीरां की आंखों में झांकते हुए कहा—तेरे प्रश्न का उत्तर मैं बाद में दूंगा, पहले तू मेरे प्रश्न का उत्तर दे। वह बेचारी चौंक गई कि पता नहीं क्या पूछेंगे। मायानंद ने पूछा—तू कौन है? वह तपाक से बोली—मैं मीरां हूं। नाम सुना तो मायानंद के चेहरे पर मुस्कुराहट दौड़ गई, लेकिन बोले—मीरां तो तेरा नाम है, तू कौन है?

मीरां अगर बड़ी होती तो शायद बेइमान हो सकती थी, शायद किताबों में पढ़ा हुआ या महात्माओं से सुना हुआ कोई उत्तर दोहरा देती—मैं आत्मा हूं, मैं शुद्ध-बुद्ध चेतना हूं, मैं ब्रह्म हूं...। लेकिन वह अभी अबोध थी, सो अभी तो वही कह सकती थी जो जानती थी। सो, जो वह नहीं जानती थी उसका उत्तर कैसे देती? बोली—मुझे नहीं पता लेकिन आप तो सब जानते हैं, तो आप ही बता दीजिए। मायानंद बोले—वह तुझे मैं नहीं बता सकता, तुझे खुद ही पता लगाना पड़ेगा; और तूने अगर यह पता लगा लिया तो तुझे अल्लाह को ढूंढने कहीं जाना नहीं पड़ेगा, वह खुद तेरे सामने आएगा।

यह कहकर मायानंद उठे और आगे की ओर चल दिए। उनके पीछे-पीछे उनके साथ चल रहे लोग भी हो लिए। मीरां भी उस समूह के पीछे हो ली। मायानंद ने पीछे मुड़कर उसे आते देखा तो मुस्कुरा दिए, कुछ बोले नहीं। इतनी दूर उन्हें जाना भी नहीं था कि वहां से बच्ची वापस घर न लौट सके। उन्हें उस गली के नुक्कड़ के पास बने छोटे-से बगीचे में ही जाना था, जहां कुछ शिष्यों ने उन्हें सत्संग के लिए आमंत्रित किया था।

बगीचे में एक छोटे-से चबूतरे पर छाता लगाकर मायानंद के बैठने का इंतजाम था। काफी लोग पहले से उनका इंजतार कर रहे थे। मायानंद चबूतरे पर बैठे तो मीरां नीचे पास में ही बैठ गई। जो वह कह रहे थे, उसकी समझ के बाहर था। लेकिन जो उनकी मौजूदगी से बह रहा था, वह उसके अंदर तक उतर रहा था। मायानंद कोई घंटा-डेढ़ घंटा बोले होंगे, और मीरां उसमें से केवल एक शब्द ही बटोर पाई—परमतत्त। मायानंद बार-बार किसी परमतत्व की बात कर रहे थे जो 'परमतत्त' बनकर मीरां के जहन में उतर गया।

हालांकि किसीके पांव छूना मीरां के संस्करों में नहीं था, लेकिन जब सत्संग के बाद सब मायानंद के चरण छूने लगे तो वह भी उठी और उनके चरणों पर सिर रख दिया। मायानंद ने अपने दोनो हाथ उसके सिर पर रख दिए। यह कोई साधारण अभिवादन या आशीर्वाद नहीं था—यह अद्वैत वेदांत में मीरां की दीक्षा थी।

उस दिन से मीरां का नाम खो गया, घर में वह बस नासपीटी

कहकर पुकारी जाने लगी। सबसे पहले तो घर पर बिना बताए सत्संग में जाकर बैठने के लिए उसे नासपीटी कह-कहकर डांटा और फटकारा गया। और उसके बाद यह रोज की कहानी हो गई क्योंकि वह पूरा समय अजीब-अजीब हरकतें करने लगी। कभी घंटों बुदबुदाकर अपने आप से ही बात करती रहती, कभी ऐसा लगता कि किसी अदृश्य व्यक्ति से कोई जिद कर रही है और रोने लगती, कभी जोर-जोर से हंसती और तितली की तरह नाचने लगती। तालीम के लिए उसने बैठना छोड़ दिया था, और घर के काम सीखना भी। घरवालों की कोई डांट-फटकार उस पर काम नहीं करती थी, और उनके लिए वह एक अजनबी-सी हो गई थी।

कुछ साल तो यह डांट-फटकार चली, लेकिन फिर घरवालों ने हथियार डाल दिए—अब वह नासपीटी से बावरी हो गई। जब उसे नासपीटी कहा जाता था तो वह एक दुत्कार थी कि अपना दिमाग वह ठिकाने लगाए। लेकिन जब सबको लगा कि वह लाइलाज है तो उसे पागल करार देकर उसे उसके हाल पर छोड़ दिया गया। अब वह बस एक बावरी थी, और बावरी कहकर ही पुकारी जाने लगी।

सब कहते कि बावरी किसी काम की नहीं, नाकारा है। कोई यह नहीं जानता था कि इस बावरी की कोख से अगले तीन सौ साल तक ऐसे मोती झरते रहेंगे जिन्हें पिरोकर संत-माल बनेगी।

और बावरी यह खुद भी नहीं जानती थी कि अद्वैत वेदांत में वह भक्ति की गंगा उतार रही है।

मायानंद के साथ उस सत्संग के बाद उस बच्ची के निर्दोष चित्त ने अल्लाह को ही परमतत्त जाना था—जिसकी न कोई सूरत है न मूरत है, जो दिखता नहीं पर हर जगह है। मायानंद ने उससे जो कहा था, उसका अर्थ उसने ऐसा लगाया था कि परमतत्व तक जाया नहीं जा सकता लेकिन उसे बुलाया जा सकता है। मायानंद ने कहा था कि तूने पता लगा लिया कि तू कौन है तो वह खुद तेरे सामने आ जाएगा—और बावरी ने समझा कि परमतत्त आ जाएगा तो वही उसे बताएगा कि वह कौन है। उसके बाल-मन के लिए यह प्रश्न बड़ा आकर्षक था कि आखिर वह है कौन, और इस प्रश्न का उत्तर परमतत्त ही दे सकता था। किसीसे अपनी बात मनवाने के जितने बालसुलभ तरीके वह जानती थी, वे सब वह परमतत्त को अपने पास बुलाने के लिए वह अपनाने लगी थी—उसे रिझा-रिझाकर बुलाना, जिद करना, जिद में रोने लगना, रूठकर बातचीत बंद कर देना, खाना न खाना। वह इतनी अभिभूत हो चुकी थी कि कभी उसे कोई आहट आती तो लगता कि परमतत्त आ रहा है तो भावातिरेक में नाचने लगती, लेकिन जब उसके आने का कोई प्रमाण न मिलता तो उदास हो जाती। ये सब ऊपर से तो पागलपन के ही लक्षण थे।

लेकिन अनजाने ही वह साधना की एक प्रक्रिया को जन्म दे रही थी—जिसमें अपनी सारी जीवन-ऊर्जा को एक पुकार बना दिया जाता है। वह पुकार, जो बस एक शुद्ध पुकार है—पुकारा किसे जा रहा है, यह पता ही न हो। जिसे पुकारा जा रहा था उसकी न तो कोई आकृति थी, न परिभाषा थी।

जैसे-जैसे बावरी बड़ी होती गई, उसकी पुकार भी बड़ी होती गई। परमतत्त को बुलाने की उसकी जिद कोई बचपन का खेल नहीं था, पूरे प्राणों की प्यास थी। एक फर्क जो अब पड़ने लगा था, वह यह था कि अंदर और बाहर का भेद मिटने लगा था। पहले तो उसकी आंखें परमतत्त को बाहर ढूंढ़ती थीं, उसके कान परमतत्त की आहट सुनने के लिए बाहर लगे रहते थे—लेकिन अब आंखें और कान अंदर भी मुड़ने लगे। अंदर देखते-सुनते कब परमतत्त से अरस-परस हो गया, पता नहीं। वे आंखें जो परमतत्त की बाट जोहती थीं, वे अब उसका गवाह थीं और यह कोई भी देख सकता था...।

यह संयोग तो नहीं हो सकता कि पंद्रह बरस बाद मायानंद फिर उसे मौहल्ले में आए। हवेली की ओर देखते हुए निकले, फिर वापस लौटे व सीढ़ियां चढ़ने लगे। बावरी ने मानो जैसे अपने कमरे से ही द्वार पर उनकी मौजूदगी को सूंघ लिया हो, वह दौड़ती हुई उनके सामने आ खड़ी हुई। इस बार उसने कुछ नहीं पूछा, मायानंद ने ही पूछा, 'तू कौन है?'

बावरी बोली :

बावरी रावरी का कहिए, मन ह्वै के पतंग भरे नित भांवरी।
मैं बंदी हूं परमतत्त की, जग जनत की भोरी

मायानंद की पूरी देह जैसे मुस्कुराहट में खिल उठी। उन्होंने झुककर बावरी को प्रणाम किया। मायानंद का यह प्रणाम सबने देखा, और उस दिन से बावरी की जगह वह बावरी साहिबा हो गई।

धीरे-धीरे बावरी साहिबा के गिर्द शिष्य जुटने लगे। वह गीत गातीं, और ये गीत ही उनके प्रवचन होते। कहने को उनके पास एक ही बात थी—घट में परमतत्त, तू और कहां को धावै...। बस इसी बात को अपने गीतों में अलग-अलग तरह से कहतीं।

शिष्य उनसे पूछते कि क्या वे उनके गीत लिख लिया करें ताकि आगे के लिए संजोए जा सकें, तो मना कर देतीं। कहतीं—'बावरी के गीत और उसकी याद को संजो कर क्या करोगे? बावरी तो आज है और कल नहीं होगी, परमतत्त सदा है। परमतत्त से ही रिश्ता बनाओ। बावरी आज है, तो बस उसके साथ नाच लो।'

बावरी साहिबा के साथ चालीस बरस लोग नाचे, और तरेसठ बरस की उम्र में उनकी देह झर गई। जीते जी उन्होंने अपने गिर्द कोई स्थान न बनने दिया और अपनी कोई समाधी बनाने से भी मना कर गईं। उनके गीत भी चार-छः बचे जो कुछ शिष्यों को याद रह गए।

वह नहीं चाहती थीं कि वह परमतत्त और किसी जन के बीच वह आएं। वह चाहती थीं कि उनकी स्मृति नहीं परमतत्त की सुरति बचे। और हुआ भी यही। उनकी स्मृति नहीं बची, लेकिन सुरति को जगाने के लिए उनसे एक लंबा धागा खिंचता चला गया। बावरी साहिबा के संबुद्ध शिष्य हुए वीरू साहिब, और वीरू साहिब ने वह सुरति सौंपी यारी को, और यारी से वह पहुंची भुरकुड़ा के बुल्ला को, बुल्ला से जगजीवन और गुलाल को, जगजीवन से दूलनदास को और गुलाल से भीखा को, भीखा से गोविंद व सरमद को, गोविंद से पलटू को। ये सभी संत बावरी-संत कहलाते हैं, लेकिन उस बावरी को कोई नहीं जानता।

यारी उस सुरति के धागे में एक निशान बन गए जहां से धागे की डोर का रंग बदलता है। यारी तक कोई पंथ नहीं था, लेकिन उनके बाद से बावरी पंथ शुरू हुआ। यारी को एक और श्रेय जाता है—बावरी साहिबा के अद्वैत वेदांत और भक्ति के संगम को उन्होंने त्रिवेणी बना दिया, सूफियत को उसमें जोड़कर। यारी ने ऐसे उन्हें आपस में गूंथ दिया कि वे अलग-अलग पहचाने ही नहीं जाते।

यारी सैय्यद कुल के थे, यानि सीधे नबी पाक का खून। नाम था यार मोहम्मद। कुल तो ऊंचा था ही, रुतबा भी बहुत बड़ा था। पिता बादशाह अकबर के खास सलाहकारों में भी रहे थे और जहांगीर के भी। शाही माल-असबाब उन्हें खूब मिलता था और दिल्ली में बड़ी जागीरें भी थीं। यारी अपने पिता की इकलौती औलाद थे, सो जो बेहतर से बेहतर तालीम मिल सकती थी वह उन्हें मिली थी। अरबी, फारसी, पश्तो, अवधी, बिरज—सब भाषाओं के जानकार थे। दर्शन शास्त्र भी उन्होंने पढ़ा था, और सूफी दर्शन पर खास महारत थी। पच्चीस बरस की उम्र होते-होते, उस समय के मशहूर कवियों में भी वह गिने जाने लगे थे और एक दार्शनिक की तरह भी लोग उनके सामने सिर झुकाते थे।

एक आदमी के जीवन में इतना कुछ हो तो स्वाभाविक है गुरूर का भी होना। उन्हें बहुत गुरूर था। नाम तो यार मोहम्मद था लेकिन किसीको इस काबिल ही नहीं समझते थे कि उसे दोस्त बना लें। लोगों को वह दो ही नजरों से देखते थे—या तो बेअकलों की तरह, या ऐसे प्रतिद्वंद्वियों की तरह जिनसे उन्हें अपने ज्ञान का लोहा मनवाना था। और इस लोहा मनवाने में वह कभी हारे भी नहीं थे। जब भी कोई विद्वान उनके सामने मुंह बाए खड़ा रह जाता, उनका गुरूर और बढ़ जाता।

बावरी साहिबा 1605 में विदा हुई थीं, और उन्हें गए बत्तीस बरस हो चुके थे। इस बत्तीसवें बरस में उनके शिष्य वीरूमल परमतत्त में जागे, उनकी सुरति की लौ जगी—और वह वीरू साहिब हो गए। उनकी शौहरत फैलने लगी, लोगें के हुजूम उनके पास पहुंचने लगे।

वीरू साहिब की खबर यार मोहम्मद को भी लगी। उन्हें लगा कि वीरू साहिब को भी आइना दिखा ही दिया जाए कि कौन बड़ा ज्ञानी है। सो उनसे बहस करने वह उनके डेरे पर पहुंच गए।

वहां जाकर देखा तो ज्ञान पर चर्चा तो क्या, कोई साधारण-सी बातचीत भी नहीं चल रही थ। वीरू साहिब के साथ पचास-सौ लोग मस्त होकर नाच रहे थे, और तालियां बजा-बजाकर एक ही पंक्ति को गीत की तरह दोहरा रहे थे—परमतत्त में डूबे रे भाई, परमतत्त में डूबे...।

यार मोहम्मह की हंसी छूट गई। उन्हें लगा कि यह पागलों का सरताज क्या भला ज्ञान पर बहस करेगा। वह एक ओर ही खड़े-खड़े देखते रहे। समय के साथ-साथ ढोलक की लय तेज होती गई और नाचने वालों की मस्ती भी। अचानक यार मोहम्मद को बोध हुआ कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कब वह भी धुन के साथ धुन मिलाकर तालियां बजाने लगे हैं। जैसे ही यह बोध उन्हें हुआ, वह फिर से अकड़कर खड़े हो गए। इधर वह अकड़कर खड़े हुए कि उधर वीरू साहिब के साथ दस-बारह लोग घेरा बनाकर उनके चारों ओर नाचने लगे—डूबो रे भाई डूबो, डूबो रे भाई डूबो...। फिर जो होना था सो हुआ। यार मोहम्मद के पांव थिकरने लगे, हाथों से तालियां बजने लगीं। एक बार थिकरन शुरू हुई तो वह तूफान बनती चली गई। वह खुद भी 'डूबो रे भाई डूबो' गाते हुए डूबते चले गए।

इसके बार यार मोहम्मद घर नहीं लौटे। महल, जागीरें, नाम, रूतबा, ज्ञान सब पीछे छूट गया। जैसे यार मोहम्मद का इंतकाल हो गया हो। उस दिन यारी पैदा हुए—जिनके लिए वह लोग ही नहीं, कायनात की हर चीज बस एक दोस्त थी।

यह तो शायद कभी ही होता हो कि न कोई खोज, न कोई जोग न तप न तैयारी—बस एक ही बार नाचकर कोई परमतत्व को अनुभव कर ले। यारी ऐसे ही अनूठे और बिरले लोगों में हैं। उस दिन के लिए यारी ने कहा है, 'मरिकै यारी जुग-जुग जीआ।'

यारी साहिब उन लोगों में से हैं जिन्होंने अनुभव भी किया है और उस अनुभव को सुगढ़ शैली में कह भी पाए। अनुभव तो उन्हें क्षण में हो गया, उसके लिए उन्होंने कोई तैयारी न की थी। लेकिन उस अनुभव को कह पाने की तैयारी उनका पूरा जीवन था, उनकी पूरी तालीम थी। इसीलिए उनके कहे पद काव्य के सुंदर खिले हुए फूल हैं—उनमें प्राण भी हैं और एक मीठा स्वाद भी :

बिरहनी मंदिर दियना बार
बिन बाती बिन तेल जुगति सों बिन दीपक उजियार
प्रानप्रिया मेरे गृह आयो, रचि-रचि सेज संवार
सुखमन सेज परमतत्त रहिया, पिया निर्गुन निरकार
गावहु री मिलि आनंद मंगल, यारी मिलि के यार

यारी भी अपनी खुशबू बिखेरकर बस यूं गुम हो गए जैसे बावरी साहिबा हो गईं। कहने को कहते हैं कि यारी साहिब की समाधी दिल्ली में कहीं है, पर कोई नहीं जानता कि वह कहां है। यारी साहिब बे-पंथ थे, वह किन्हीं समाधियों में नहीं मिलते, बस उन गीतों में मिलते हैं जो वह बिखरा गए हैं—उनके वे थोड़े-से गीत जो बच पाए हैं।

ओशो जब उनके गीतों पर बोले तो उन्होंने उन गीतों को वे फूल कहा है जिनसे वसंत प्रारंभ होता है। यारी साहिब पर बोलने के बाद ओशो पूरे वसंत पर बोले—गुलाल से पलटू तक।

बस बावरी साहिबा को उन्होंने छोड़ दिया। कभी उनका जिक्र तक भी नहीं किया। बस एक जगह उनका नाम लिया है—यारी पर बोलते हुए, उनके गुरु की गुरु की तरह। बस। ऐसा करके उन्होंने बावरी साहिबा के साथ ही सुर में सुर मिलाया है—बावरी रावरी का कहिए...।

ओशो के शब्दों में

यारी का जन्म हुआ दिल्ली में। नाम था: यार मोहम्मद। फिर मोहम्मद तो जल्दी ही खो गया। क्योंकि जिसे परमात्मा को पुकारना हो, वह हिंदू नहीं रह सकता, वह मुसलमान भी नहीं रह सकता, वह ईसाई भी नहीं रह सकता। परमात्मा को पुकारने के लिए कुछ शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं। और पहली शर्त है—विशेषण छोड़ देने पड़ते हैं, आग्रह छोड़ देने पड़ते हैं, मंदिर और मस्जिद छोड़ देने पड़ते हैं। तभी तो खुद मंदिर बनोगे, खुद मस्जिद बनोगे। जब तक बाहर के मंदिर और मस्जिद को पकड़े रहोगे, याद ही न आएगी कि अपने भीतर भी एक मंदिर था। और उस मंदिर में न कभी दीप जले, और उस मंदिर में न कभी धूप जली। उस मंदिर में कभी नाद न हुआ। अपने भीतर भी एक मस्जिद थी, जिसमें कभी अजान न उठी, जिसमें कभी नमाजें न पढ़ी गईं, जहां अंधेरा था तो अंधेरा ही रहा।

बाहर के मंदिर-मस्जिदों में जो भटका है, वह भीतर के असली मंदिर और मस्जिद से वंचित रह जाएगा। जिसने नजर बाहर रखी, वह कभी परमात्मा को नहीं पा सकेगा।

सो जल्दी ही यार मोहम्मद का मोहम्मद कहां खो गया, पता नहीं! ये तो बाहर के रंग हैं। यह तो एक उसकी वर्षा का झोंका आया कि ये रंग बह जाएंगे। शिष्य थे वीरू फकीर के। वीरू मुसलमान नहीं हैं। वीरू तो जन्मे थे हिंदू घर में। लेकिन जब कोई ज्योति जलती है तो सब तरह के दीवाने चले आते हैं, भांति-भांति के परवाने चले आते हैं! उस मदमस्ती में कौन देखता है—कौन हिंदू, कौन मुसलमान? वीरू खुद एक मुसलमान फकीर स्त्री के शिष्य थे—बावरी साहिबा के।

संतों का जगत कुछ और ही है। वहां बाहर के भेदों का कोई मूल्य नहीं। यह स्त्री, बावरी साहिबा भी बड़ी अदभुत स्त्री थी। स्त्रियां तो थोड़ी ही हुई हैं जो अंगुलियों पर गिनी जा सकें, उनमें बावरी भी एक है। उसका तो नाम भी पता नहीं। ऐसी पागल हुई प्रभु के प्रेम में कि बस इतनी ही याद रह गई है कि बावरी थी, कि दीवानी थी, कि पागल थी। बावरी थी मुसलमान—संस्कारगत, जन्मगत। शिष्य थे वीरू—जन्मगत, संस्कारगत हिंदू। प्रशिष्य थे यारी साहब, फिर मुसलमान। ऐसे यारी में दो धाराओं का मिलन हुआ। ऐसे यारी में संगम हुआ। और यारी के वचनों में जगह-जगह उस संगम की झलक मिलेगी।

पहले मोहम्मद गया; फिर यार थे, यार से यारी हो गए। वह बात भी समझ लेनी चाहिए। यार का अर्थ होता है—मित्र; यारी का अर्थ होता है—मैत्री, मित्रता। जब अहंकार खो जाए तो मित्र मैत्री हो जाता है, मित्र मित्रता हो जाता है। जब अहंकार खो जाए तो फूल खो जाता है, सुवास रह जाती है। फिर तुम पकड़ नहीं सकते इस सुवास को, मुट्ठी में बांध नहीं सकते इस सुवास को। न उसका कोई रूप है, न रंग है। ऐसी ही मैत्री है।

मैत्री मित्रता की पराकाष्ठा है। छूट गए सीमाओं के बंधन, गिर गईं जंजीरें, मैत्री ने पंख फैला दिए, उड़ गई आकाश में! प्रेम का चरम रूप है। इसलिए नाम प्यारा है! यार मोहम्मद से रह गए यार; फिर यार भी खो गया, बची यारी। और इसलिए मैं कहता हूं:

दिल में नये अरमान बसाने का दिन आया
गुंचे की तरह दिल को खिलाने का दिन आया
फूलों की तरह हंसने-हंसाने का दिन आया
बादल की तरह झूम के छाने का दिन आया
मुस्कान की बरखा में नहाने का दिन आया

गिरने देना यारी के वचनों को जैसे वर्षा की बूंदाबांदी हो। घिरने देना उनके मेघ को तुम्हारे ऊपर! नहा लेना! यही वस्तुतः गंगा का स्नान है। संतों की वाणी बरस जाए तुम पर तो देह ही नहीं शुद्ध हो जाती, प्राणों के प्राणों तक भी शुद्धि पहुंच जाती है। तन ही नहीं नहा लेता, मन ही नहीं नहा लेता, तन और मन के पीछे छिपा हुआ साक्षी भी सारी धूल झाड़ कर उठ बैठता है। नींद टूट जाती है। और तुम्हारे भीतर जो कली न मालूम कितने दिन से बे-खिली पड़ी थी, खिल उठती है। खिले हुए फूलों के संग-साथ का यही तो अर्थ है। खिले हुए फूलों के संग-साथ का यही तो प्रयोजन है कि तुम्हें भी याद आ जाए कि तुम भी खिलने को आए थे यहां और बिना खिले मत लौट जाना। तुम्हें भी याद आ जाए कि खिलना तुम्हारी भी क्षमता है, तुम्हारा भी स्वभाव है।

ऐसे करना यारी का सत्संग!

✡ ✡ ✡

दुनिया बड़ी सूनी हो गई है। दुनिया बड़ी सूनी है! अब नहीं मिलते यारी जैसे लोग। दुनिया बड़ी उदास है। आदमियों की भीड़ बढ़ती गई है और आदमी खोता गया है। आदमियों की भीड़ बढ़ती गई है और आत्मा खोती गई है। अब नहीं मिलते वे प्यारे लोग, या बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। कभी गांव-गांव उनके दीये जलते थे। कभी बस्ती-बस्ती उनकी रोशनी से रोशन थी। इस जमीन ने बड़े प्यारे फूल उगाए हैं!

क्यों ऐसा हो गया? अब प्यारे फूल क्यों नहीं उगते? झाड़ियां अब भी हैं, मगर गुलाब के फूलों के दर्शन नहीं होते। कहीं कोई बुनियादी चूक हमारे दृष्टिकोण में हो गई है। हम ज्यादा से ज्यादा बहिर्मुखी हो गए हैं। और अब तो बहिर्मुखता की हद आ गई! अब तो इस हद के आगे गए तो मौत है। इस हद के आगे गए तो आदमियत समाप्त है। अब तो लौट पड़ना होगा। अब तो फिर खोए खजाने खोजने होंगे।

बिरहिनी मंदिर दियना बार, प्रवचन 1

नो एक्ज़िटः

ज्यां पॉल सार्त्र

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में सोरेन कीर्कगार्द से लेकर ज्यां पॉल सार्त्र तक अनेक दार्शनिकों ने दर्शन-शास्त्र व धर्म की पुरानी लकीरों को तोड़ते हुए एक नयी धारा को जन्म दिया—अस्तित्ववाद। अगर एक तटस्थ परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह ओशो के कार्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। अस्तित्ववाद ने इस जगत और इस जगह के नियमों के विषय में प्रचलित विश्वासों के प्रति प्रश्न उठाए, मनुष्य को दिए गए ढांचों के प्रति प्रश्न उठाए। ओशो ने इन प्रश्नों का अनुमोदन किया, उन्हें समर्थन दिया। लेकिन केवल इतना ही होता तो अस्तित्ववाद दार्शनिकों की धारा में वे भी बस एक और कड़ी ही होते। उन्होंने इन प्रश्नों के उत्तर की ओर भी इंगित किया।

ज्यां पॉल सार्त्र द्वारा रचित नो एक्ज़िट अस्तित्ववाद के उस दर्शन का नाट्य रूपांतरण है, जो यह मानता है कि दू

अपेक्षित व्यवहार ही करने की कोशिश करें और वह भी इस अपेक्षा में वे वह व्यवहार करें जो हमारे द्वारा अपेक्षित है तो हमने अपने लिए एक नर्क खड़ा कर लिया।

अस्तित्ववाद सारा उत्तरदायित्व व्यक्ति पर छोड़ता है। यही नो एक्ज़िट में कहानी का आधार है, और नाटक के तीनों किरदारों के वक्तव्य स्वयं को स्वीकृत करवाए जाने की पीड़ा के दंश को अभिव्यक्त करते हैं। तीनों जिस आरामदेह कमरे में एक साथ बंद हैं वहां कोई दर्पण नहीं है। यह एक प्रतीक है कि वे लोग स्वयं को नहीं देख पा रहे। यदि वे स्वयं को देख पाएं, स्वयं के साथ हो पाएं तो स्वर्ग में हों। लेकिन वे नर्क में हैं, क्योंकि उस कमरे में बंद हैं जहां वे स्वयं नहीं हैं केवल दू

ओशो का नजरिया

ज्यां-पॉल सार्त्र ने एक बहुत ही सुंदर किताब लिखी है, जिसमें नर्क का वर्णन किया गया है। किताब का नाम है नो एक्जिट। वहां पुराने तरह के सताने के ढंग नहीं है। सब तरह की सुविधाएं और वातानुकूलित व्यवस्था जो भी चाहिए वह उपलब्ध है। एक ही समस्या है कि वहां से बाहर नहीं जा सकते।

तो इस कहानी में जो लोग नर्क लाए गए हैं वे सभी उस वातानुकूलित जगह पर फंस गये हैं, सभी अजनबी, कहीं जाना नहीं है, कुछ भी नहीं करना है, हर चीज बिना मांगे मिल जाती है। आप बस चाहो और आपको मिल जाता है—ऐसा वर्णन स्वर्ग का हुआ करता था। वहां चाहो और मिल जाता है, लेकिन वहां से बाहर नहीं जा सकते।

यह एक वातानुकूलित दुःस्वप्न है। आप बाहर नहीं जा सकते—सभी सुंदर सोफे पर बैठे हुए, लेकिन बस बैठे हुए। लोग बिना किसी कारण के एक-दूसरे से ऊब गये हैं...लगातार लोगों की नजरों में, कोई निजता नहीं, और समस्या लगातार बढ़ती जाती है, 'अब क्या होने वाला है? क्योंकि हम बाहर नहीं जा सकते।'

वातानुकूलित दुःस्वप्न के बारे में जो वर्णन वह करता है, बिना जाने वह तुम्हारे मन के बारे में बात कर रहा है, वह तुम्हारे मन का वर्णन कर रहा है। तुम भी अपने मन में सभी तरह के सपनों, कल्पनाओं, धारणाओं, विचारों के साथ बंधे हो—लेकिन बाहर जाने की कोई राह नहीं है।

ध्यान मन से बाहर की विधि नहीं है। ध्यान कहता है, 'बस अपने मन के साक्षी बनो और तुम बाहर ही हो। सच तो यह है कि तुम हमेशा ही बाहर ही हो।' मन के भीतर होने का तुम्हारा भ्रामक विचार है। एक बार तुम मन को रोक देते हो, अचानक भ्रामक विचार खो जायेगा और तुम अपने को खुले में पाओगे। तब सारा आकाश तुम्हें उपलब्ध हो जायेगा—तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारा अनंत जीवन, सभी तरह के आशीर्वाद तुम पर बरसाने के लिए यह सुंदर अनंत अस्तित्व हमेशा तुम्हें उपलब्ध है।

बस छोटी-सी तरकीब...असल में यह तकनीक भी नहीं है, तरकीब है। तुम मन में नहीं हो, लेकिन तुम सोचते रहे हो कि तुम मन में हो—यही समस्या है।

तुम्हें कुछ दुःस्वप्न जरूर याद होंगे : इससे तुम्हें पता चलेगा कि कैसे तुम सतत इस स्थिति में हो। दुःस्वप्न में, तुम अपनी आंखें खोलना चाहते हो और तुम खोल नहीं सकते; तुम अपने हाथ हिलाना चाहते हो और तुम हिला नहीं सकते। नो एक्जिट!—और दुःस्वप्न बहुत गहन हो जाता है...हो सकता है कि शेर तुम्हारी छाती पर खड़ा है या तुम्हें पहाड़ से अतल गहराई में फेंक दिया गया है...जब यह पूरी तरह से सघन हो जाता है, वह सघनता तुम्हें जगा देती है।

यदि तुम्हारा दुःस्वप्न हलका-फुलका ही है तो तुम उससे बाहर नहीं आ सकते। लेकिन यदि वह बहुत सघन है तो वह सघनता तुम्हें जगा देती है, और अचानक वहां कोई दुःस्वप्न नहीं होता है। तुम कभी शेर के जबड़े में थे ही नहीं और तुम कभी पहाड़ से फेंके ही नहीं गये; तुम बुलडोजर से कुचले नहीं गये थे—कुछ भी नहीं हो रहा था। वह सिर्फ सपना था, लेकिन तुम सोच रहे थे कि तुम उसमें थे। तुम उसमें नहीं थे; जब वह हो रहा था तब भी तुम उससे बाहर थे। वह बस एक फिल्म थी जो तुम्हारे सामने चल रही थी। तुम उससे बाहर थे।

ता हुई

With Love & Gratitude

Swami Dhyan Vibodh
Dehradun

अनिल सरस्वती

प्रकृति की सर्वशक्तिमान पुत्री: विद्युत

घने काले बादल छाए हैं। दिन में ही अंधेरा छाया हुआ है और एक गहन गरज सुनाई देती है जो सुनाई देने से अधिक महसूस होती है—अचानक यह गरज लरजती हुई दहला देने वाली ध्वनि में बदलकर एक धमाका बन सुनाई देती है। और हम जानते हैं कि बादलों की टकराहट से पैदा हुई एक शक्तिशाली ऊर्जा की लहर पृथ्वी की सतह पर हमारे किसी पास के क्षेत्र में टकराई है। क्या आप जानते हैं कि यह उत्पन्न हुई बिजली कितनी ताकतवर है? प्रत्येक शक्तिशाली बिजली की कौंध औसतन 1000 अरब वाट्स की ऊर्जा से भरी होती है जो लगभग 56 आधुनिक घरों को 24 घंटे की संपूर्ण विद्युत दे सकती है।

हमारी पृथ्वी पर कहीं न कहीं प्रत्येक दिन 30 लाख विद्युत की लहरें गिरती हैं जो प्रत्येक सैकंड 44 के बराबर है। यह वह विशाल ऊर्जा है जो बस धरती में समा जाती है और मनुष्य इसका कोई लाभ नहीं उठा पाता। जब हम बिजली की कौंध देखते हैं तो यह वृहद आकार की दिखाई देती है जबकि इसकी वास्तविक चौड़ाई मात्र 2-3 सेंटीमीटर की होती है। लंबाई में यह 2 से 3 मील लंबी होती है। इसमें इतनी ऊर्जा होती है कि इसका तापमान 30000 सेंटीग्रेड का हो जाता है जो सूर्य की सतह से पांच गुना

अधिक गर्म है। प्रकृति की यह अद्‌भुत घटना अकारण ही नहीं है। इससे पैदा हुई भीषण ऊष्मा हमारे वातावरण में नाईट्रोजन और ऑक्सीजन का विलय करवाती है, जिससे नाईट्रोजन ऑक्साईड पैदा होती जो वायु में उपस्थित नमी के साथ मिल कर धरती पर वर्षा करती है—जिससे धरती की वनस्पति को नाईट्रेट से भरपूर जल मिलता है।

18 वीं शताब्दी में यूरोप की चर्चों में यह विश्वास था कि चर्च के घंटे बिजली के गिरने से बचाते हैं। उस समय इन घंटों पर लिखा जाता था 'फुल्गूरा फ्रागो' जिसका अर्थ है, 'मैं बिजली को भगाता हूं।' जैसे ही बिजली गिरने की आशंका होती, चर्च में घंटा बजाने वाले भाग कर घंटाघर के ऊपर आ जाते और जोर-जोर से घंटा बजाने लगते। जबकि ऐसे समय में यह स्थान सबसे अधिक असुरक्षित था। वर्ष 1753 से 1786 तक मात्र फ्रांस में 103 घंटा बजाने वाले लोग बिजली के प्रहार से मारे गए जिसके बाद इस परंपरा को बंद कर दिया।

वर्ष 1752 में जून माह का एक दिन था जब वह समय आ पहुंचा जिसका वैज्ञानिक बेंजामिन फ्रेंक्लिन को इंतजार था। आकाश में घने बादल छाए थे, बेंजामिन के मन में लंबे समय से चल रहा था कि वह बिजली जो धरती पर गिरती है क्या उसे नियंत्रित कर उतारा जा सकता है? आज वह अपने इस वैज्ञानिक प्रयोग के लिए तैयार था। उसने इसके विषय में अपने पुत्र के अलावाा किसी और को नहीं बताया था। रेशम के एक बड़े से रूमाल को दो डंडियो पर तान कर उसने एक बड़ी पतंग बनाई और खुले मैदान में एक शेड की शरण से इसे उड़ाने लगा। काफी देर की प्रतीक्षा के बाद उसने अचानक देखा कि उसकी पतंग की डोर के रेशे खड़े होने लगे। पतंग उड़ाने से पहले बेंजामिन फ्रैंकलिन ने पतंग के पास डोर से एक छोटी-सी लोहे की छड़ बांध दी थी और उसके हाथ के पास निचले छोर पर डोर से एक लोहे की चाबी बांधी थी। जैसे ही उसने उस चाबी को छुआ उसे जोरदार बिजली का झटका लगा और उसमें से प्रकाश की चिंगारियां निकलीं। यह धरती पर पहला प्रयोग था जब प्राकृतिक बिजली एक धागे से होती हुई गुजरी थी।

आज विशालकाय पावर लाइनों द्वारा विद्युत संपूर्ण धरती पर घूम रही है लेकिन यही विद्युत संपूर्ण जगत में हर कहीं विद्यमान है। तेज बहती हवाएं, समुद्र की उठती लहरें, सूर्य का प्रकाश और ऊंचाई से गिरता पानी, यह सब विद्युत उत्पन्न कर सकते हैं। सागरों में पाई जाने वाली इलेक्ट्रिक ईल नाम की मछली एक बार में इतना विद्युत पैदा कर सकती है कि वह इसके वार से किसी भी मनुष्य और यहां तक कि घोड़े को भी मार सकती है।

यदि हम विद्युत ऊर्जा की तुलना खनिज इंधनों से करें तो पायेंगे कि यह सबसे कम प्रदूषण फैलाने वाली ऊर्जा है। लेकिन विडंबना यह है कि इसे पैदा करने में ही हम भयंकर मात्रा में प्रदूषण फैलाते हैं।

भारत में 75 प्रतिशत बिजली की आपूर्ति कोयला जला कर की जाती है। वर्ष 2018 में भारत में 7160 लाख मीट्रिक टन कोयले का खनन किया गया। कोयले के खनन और उपयोग में भारत का स्थान चीन के बाद आता है। यह दोनों देश कोयले के उपयोग से पैदा हुए प्रदूषण के लिए विश्व में अग्रणी देश हैं।

मनुष्य ने अपनी आसानी और सुविधा देखते हुए विद्युत पैदा करने के लिए विनाशकारी उपाय काम में लाए हैं। जबकि हमारा पूरा ध्यान प्रकृति में चहुं ओर उपलब्ध विद्युत को ऊर्जा में रूपांतरित करने पर होना चाहिए। हमारे सारे संसाधन विनाश की तैयारी में लगे रहते हैं। इन्हीं संसाधनों को इस धरती को स्वर्ग में रूपांतरित करने के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। बस जरूरत है तो एक राजनैतिक संकल्प की कि वि ज्ञा न को पृथ्वी पर जीवन के संवर्धन में लगाना है न कि विनाश में।

वैज्ञानिकों के सामने एक बड़ा दायित्व है

यह बात सर्वविदित हो जानी चाहिए कि विज्ञान ने जो भी किया है उससे इस ग्रह के जीवन में एक बड़ा संकटपूर्ण क्षण ले आया है; और केवल विज्ञान ही उसे ठीक कर सकता है।

मिसाल के तौर पर, प्रदूषण और ओजोन की पर्त के विनाश की समस्या—यह सिर्फ विज्ञान ने ही पैदा की है और विज्ञान ही उसे हल कर सकता है। विभिन्न उपाय खोजे जा सकते हैं जो ओजोन की पर्त को नष्ट नहीं करते या 'ग्रीनहाउस परिणाम' पैदा कर सकते हैं। अगर वैसा करना असंभव है तो हानिकारक कारखाने बंद कर देने चाहिए और उनके उत्पादनों की जगह कुछ और पैदा करना चाहिए, लेकिन यह सब विज्ञान को ही करना पड़ेगा। विज्ञान की निंदा करने में कोई सार नहीं है क्योंकि उसने बेहतर स्वास्थ्य और दवाएं दी हैं, उसने लाखों बच्चों को बचाया है जो कि मर जाते हैं। और ऐसे सैकड़ों आविष्कार हैं जो खरीद लिए गए हैं लेकिन कभी बाजार में उपलब्ध नहीं किए गए। वे इसीलिए खरीदे गए हैं ताकि बाजार में उपलब्ध न हों; क्योंकि वे आविष्कार न्यस्त स्वार्थों के खिलाफ थे। एक बार एक विश्व शासन हो जाए तो चीजों की बिलकुल ही भिन्न व्यवस्था हो सकती है।

विज्ञान की बहुत संभावनाएं हैं, लेकिन हमने आज तक उन संभावनाओं का उपयोग करने की क्षमता प्राप्त नहीं की है।

एक विराट क्रांति की जरूरत है। जिस तरह कभी वैज्ञानिकों ने धर्म के खिलाफ बगावत की थी, धर्म से लड़ाई लड़ी थी, अब उन्हें राजनीति के साथ, राष्ट्रवाद के साथ लड़ाई लड़नी है। उनका उत्तरदायित्व बड़ा है।

नये मनुष्य को उनकी और उनकी क्रांति की आवश्यकता होगी। मनुष्यता के जीवित बने रहने के लिए वैज्ञानिक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोग हैं।

ओशो, *स्वर्णिम भविष्यः एक महान चुनौती*

वॉइसिंग : आवाज़ के छिपे खजाने

आपकी आवाज़ बहुत ही कुशलता से प्रकट करती है कि आपके भीतर क्या है। आपका व्यक्तित्व, आप क्या दिखाना चाहते हैं या क्या छिपाना चाहते हैं, यहां तक कि आपका पूरा अस्तित्व भी इससे ही अभिव्यक्त होता है कि आप अपनी आवाज़ का कैसे प्रयोग करते हैं।

ओशो मल्टीवर्सिटी आत्म-रूपांतरण की जो अनेक विधियां उपलब्ध कती है उनमें से अपनी आवाज़ पर कार्य करना भी एक है। वॉइसिंग समूह प्रतिभागियों को आमंत्रित करता है कि वे अपनी आवाज़ और अपने अंतर्जगत के बीच के संबंध को खोजें व पहचानें। यह प्रक्रिया अमरीकन संन्यासिन प्रतिभा ने विकसित की है, यहां वह हमें इनके बारे में बता रही हैं।

गहरे में हर कोई जानता है कि गाना कितनी सुंदरता से एक स्वतंत्रता और उन्मुक्ति का अनुभव देता है लेकिन अधिकांश लोग खुलकर गाने से झिझकते हैं। गाने के संबंध में बहुत से विश्वास हमने खड़े कर लिए हैं कि तकनीकी रूप से गाने में जब तक कुशलता न हो तो हमारा खुलकर गाना एक हास्यास्पद क्रिया होगी—इसी तरह के विश्वासों के तले हमारी कुछ स्वाभाविक संभावनाएं दब गई हैं, खो गई हैं। वॉइसिंग समूह में हम इस गलतफहमी को समझने का प्रयास करते हैं और अपने मौलिक, अप्रदू
अवसर देते हैं।

वॉइसिंग में हम अपने श्रवण संस्थान में संचित सूचनाओं में भी गहरे उतरते हैं ताकि सुनने, अभिव्यक्ति और मौन में उतरने के बीच जो सेतु है उसे पहचान सकें। इस समूह में हम संप्रेषण से संबंधित समस्याओं पर भी काम करते हैं—जैसे कि अपनी बात को कहने में भय, झिझक या संकोच के भाव। हम ऐसे विषयों पर भी ध्यान देते हैं कि अपनी कोई बात कह देने के बाद हम क्यों ग्लानि में चले जाते हैं या शर्मिंदा हो जाते हैं। संप्रेषण के दू
सामने लाते हैं कि क्यों कुछ सुनने के बाद हम आहत हो जाते हैं, अपमानित महसूस करते हैं। हमारा सुनना या कहना इस तरह के भावों से मुक्त हो तो हम आत्म-स्वीकार की दिशा में बढ़ सकते हैं जहां से होकर आत्म-रूपांतरण का मार्ग खुलता है।

वॉइसिंग प्रक्रिया में हम सीखते हैं कि कैसे हम अपने शरीर के अलग-अलग केंद्रों से सुनें। यह कला एक बार आ जाए तो हम प्रकृति की आवाजों को, दू अपने आपको भी बिना कोई भाव बीच में लाए सुन सकते हैं।

यह समूह आपको आपकी गरिमा से परिचित कराता है, आपकी सृजनात्मकता के अकूत भंडार के द्वार को खोलता है और आपको आपके हृदय के गहन मौन में उतरने में सहयोगी होता है।

आपने इस समूह की रचना कैसे की?

1970 के आसपास की बात है जब मैं एक आध्यात्मिक अभीप्सा लिए यहां-वहां भटक रही थी। अमरीका में मेरे पास सब कुछ होते हुए भी भीतर एक विकराल खालीपन था और पता नहीं चल रहा था कि मैं जी क्यों रही हू
समय मेरे सामने सबसे बड़ा प्रश्न था कि मैं कौन हू
इस बड़े विस्तार में मैं कहां फिट आती हू

यही सब प्रश्न थे जो मुझे एक खोज में ले गए। सबकुछ छोड़कर मैं साउथ अमरीका के बीहड़ों में घूम रही थी। एक दिन अचानक मैंने पाया कि मैं एक गीत गा रही हू
बाथरूप में गुनगुनाना एक अलग बात है। ऐसे तो कभी नहीं गाया था कि पूरे प्राण उसमें लग जाएं। लेकिन उस दिन, मेरा रोम-रोम गा रहा था। उस दिन लगा कि बस गीत ही है, और मैं नहीं हू

पता नहीं कितनी देर मैं गाती रही। गीत जब पूरा हुआ तो लगा कि अब मैं अधिक सुन पा रही हू
अलग-अलग आयाम हैं जिन्हें मैं महसूस कर पा रही हू

उस दिन मेरे लिए एक नया आयाम खुल गया। मैं गीत और संगीत की राह पर चल पड़ी। उसी दौरान मुझे ओशो का एक प्रवचन सुनने को मिला। ओशो को पहली बार जब मैं सुन रही थी तो मुझे महसूस हुआ कि मैं सागर-तट पर बैठी हू
में छिपा हुआ था सागर का अथाह मौन। किसी भी व्यक्ति को सुनते समय संगीत और मौन का ऐसा अनुभव मैंने कभी नहीं किया था। अगले ही हफ्ते मैं भारत के लिए रवाना हो गई और ओशो के पास आ गई।

दर्शन में ओशो से जब मैंने अपना अनुभव कहा तो उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि मैं अपने अनुभव पर आधारित एक सामूहिक विधि निर्मित करूं। जब यह विधि मैं विकसित कर रही थी तो समय-समय पर ओशो से भी पूछती और उनके सुझावों के आधार पर विधि को परिष्कृत करती। तब से लगातार इस समूह का संचालन हो रहा है।

यह समूह किन-किन आयामों पर काम करता है?

इस विधि में हम ध्वनि की नीचे से लेकर ऊपर तक की सभी स्वर-लहरियों पर ध्यान को ले जाते हैं। ध्वनि का हर स्तर अलग-अलग विषयों को उजागर करता है जिनको हम अपने चक्रों और उनसे जुड़े चेतना के विविध तलों के परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं। हमारे हर भाव, व्यक्तित्व की हर दशा और स्थिति की अपनी ध्वनि होती है, स्वर का आरोह या अवरोह होता है जिन्हें शरीर के अलग-अलग हिस्सों में स्थित पाया जा सकता है।

जैसे-जैसे हम अपने अंतर्जगत के प्रति अपने बोध को तीक्ष्ण करते हैं तो पाते हैं कि न केवल हमारे भावों का बल्कि हमारे मन में चलने वाले आंतरिक संवादों का भी एक ध्वनिगत ढांचा होता है। वॉइसिंग समूह में गीत के माध्यम से हम अपने इन ढांचों को बाहर लाते हैं ताकि अपने व्यवहार में होने वाली क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को हम समझ सकें, उनकी भावनात्मक तह को खोल सकें।

हमारी बहुत सी समस्याएं, हमारे विषाद और असंतोष इस कारण होते हैं कि हमारी कुछ ऊर्जाएं पड़ी सड़ रही हैं। वॉइसिंग की प्रक्रिया में हम गीत के माध्यम से उन्हें बाहर लाते हैं और मुक्त करते हैं।

वॉइसिंग की प्रक्रिया में प्रतिभागियों को प्रेरित किया जाता है कि अपने संबंध में उन्होंने जो भी नकारात्मक या कल्पनात्मक भाव पाल रखे हैं उन्हें समझें और उनसे बाहर आएं। उन्हें आमंत्रित किया जाता है कि हर परिस्थिति और दशा के लिए वे अपने स्वयं के उत्तरदायित्व को स्वीकार करें और अपनी हर मनोदशा को गाकर बाहर लाएं, उससे परिचित हों, और उनके निराकरण के लिए अपना स्वयं का गीत उठने दें। यह प्रक्रिया हर किसी को स्वयं अपना टीचर, अपना कल्याणदाता बनने का अवसर देती है।

इस प्रक्रिया में श्रवण की क्या भूमिका है?

अत्यधिक ध्वनि प्रदू
यदि इस क्षमता को हम नया जीवन दे सकें तो हम अपनी आस-पास की चीजों के प्रति तो अधिक संवेदनशील हो ही सकते हैं, अपनी अंतर्प्रज्ञा को और अपने शरीर की प्रज्ञा को भी जगा सकते हैं जो निरंतर हमारा मार्गदर्शन करने को तत्पर है।

अपने अंतर्जगत और अपनी आवाज के संबंध को लयबद्ध करने के लिए जरूरत है कि हम सुनने की कला सीखें। जो हम सुन नहीं सकते, उसे अभिव्यक्त भी नहीं कर सकते। सुनना केवल सुनाई पड़ना नहीं है। सुनना एक बोधपूर्ण कृत्य है कि कौन सी ध्वनि हमें किस प्रकार प्रभावित कर रही है : वह कैसे हमारे भीतर गूंजती है, किन भावदशाओं को जगाती है और हम उसके प्रति कैसे प्रत्युत्तर देते हैं।

वॉइसिंग प्रक्रिया में हम सीखते हैं कि कैसे हम अपने शरीर के अलग-अलग केंद्रों से सुनें। यह कला एक बार आ जाए तो हम प्रकृति की आवाजों को, दू
सकते हैं। तब जीवन संगीत की एक स्वर-लहरी जैसा लगने लगता है। फिर हम अनुभव कर सकते हैं कि ये ध्वनियां कैसे हमें अलग-अलग तलों पर प्रभावित करती हैं। साथ ही यह कला भी हमें आ जाती है कि जो ध्वनियां हमें सकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं उन्हें हम सचेत रूप से अपने आस-पास पैदा करें।

अंततः हमारा लक्ष्य है उस मौन से ओत-प्रोत हो जाना जिसे कोई ध्वनि प्रदू
अनुभव हमें होने लगे तो किसी भी उहापोह के क्षण में इसमें डुबकी लगा लें और उहापोह से अलग हो जाएं, दू

ओशो कुंडलिनी ध्यान

थकान व तनाव की परतें खोलने की एक विधि

संगीत के सहयोग से की जाने वाली यह एक घंटे की विधि आपके शरीर व मन को शिथिल करती है और साथ ही मनो-शारीरिक संस्थान को एक नयी ताजगी भी देती है। इसके पहले दो चरणों में किया जाने वाला तीव्र कंपन और नृत्य भीतर पड़ी तनाव की गांठों को खोलता है और अवरुद्ध ऊर्जा को मुक्त करता है ताकि वह स्वस्थ रूप से बह सके और आनंद में रूपांतरित हो सके। बाद के दो अंतिम चरण मुक्त हुई ऊर्जा को ऊपर की ओर गति देते हैं ताकि वह मौन के आकाश को छू सके। इस विधि को दोपहर बाद सूर्यास्त से कुछ पहले करना बहुत लाभदायी होता है। इस समय करने पर दिन भर की आपा-धापी को यह विधि शांत करती है और मनोशारीरिक तनावों को शिथिल करती है।

ओशो कुंडलिनी ध्यान

इस ध्यान में पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं। यह ध्यान ओशो के निर्देशन में तैयार किए गए संगीत के साथ किया जाता है। यह संगीत ऊर्जागत रूप से ध्यान में सहयोगी होता है और ध्यान विधि के हर चरण की शुरुआत को इंगित करता है।

प्रथम चरण: पंद्रह मिनट
शरीर को ढीला छोड़ दें और पूरे शरीर को कंपने दें। अनुभव करें कि ऊर्जा पांव से उठ कर ऊपर की ओर बढ़ रही है। सब ओर से नियंत्रण छोड़ दें और कंपना ही हो जाएं। आपकी आंखें खुली भी रह सकती हैं और बंद भी।

दूसरा चरण: पंद्रह मिनट
नाचें—जैसा आपको भाए, और शरीर को, जैसा वह चाहे, गति करने दें।

तीसरा चरण: पंद्रह मिनट
आंखें बंद कर लें और निश्चल बैठ जाएं या खड़े रहें...भीतर या बाहर जो भी हो, उसके साक्षी बने रहें।

चौथा चरण: पंद्रह मिनट
आंखें बंद रखे हुए ही, लेट जाएं और निश्चल हो रहें।

कंपन को होने दो...

जब तुम कुंडलिनी ध्यान करो, तो कंपन को होने दो, उसे करो मत। शांत खड़े हो जाओ, कंपन को उठता महसूस करो और जब तुम्हारा शरीर थोड़ा कंपने लगे, तो उसको सहयोग करो, परंतु उसे स्वयं से मत करो। उसका आनंद लो, उससे आह्लादित होओ, उसे आने दो, उसे ग्रहण करो, उसका स्वागत करो, परंतु उसकी इच्छा मत करो।

यदि तुम इसे आरोपित करोगे तो यह एक व्यायाम बन जाएगा, एक शारीरिक व्यायाम बन जाएगा। फिर कंपन तो होगा लेकिन बस ऊपर-ऊपर, वह तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं करेगा। भीतर तुम पाषाण की भांति, चट्टान की भांति ठोस बने रहोगे: नियंत्रक और कर्ता तो तुम ही रहोगे, शरीर बस अनुसरण करेगा। प्रश्न शरीर का नहीं है—प्रश्न हो तुम।

जब मैं कहता हू

प्राणों को जड़ों तक कंप जाना चाहिए, ताकि वे जलवत तरल होकर पिघल सकें, प्रवाहित हो सकें। और जब पाषाणवत प्राण तरल होगें तो तुम्हारा शरीर अनुसरण करेगा। फिर कंपाना नहीं पड़ता, बस कंपन रह जाता है। फिर कोई उसे करने वाला नहीं है, वह बस हो रहा है। फिर कर्ता नहीं रहा।

ओशो कुंडलिनी ध्यान का क्लिनिकल प्रयोग :

मांसपेशियों को तनाव-मुक्त करने का एक शक्तिशाली उपाय

शरीर को लयबद्ध गति से कंपाना अपनी मांसपेशियों से तनाव को निकालने, अपने जोड़ों को स्वस्थ करने और रक्त संचार को सुचारु करने का एक बहुत कारगर उपाय है। कंपन विषाद को कम करता है, तनाव को शिथिल करता है और विचारों को एक अवकाश देता है। यह हमारे शरीर के जकड़े हुए ढांचों को भी ढीला करता है जिससे कि हमारी स्वाभाविक ऊर्जा स्वस्थ रूप से प्रवाहित हो सके।

कई वर्षों से मैं विभिन्न अस्पतालों में डॉक्टरों व नर्सों के साथ स्ट्रेस मेनेजमेंट पर काम कर रही हूं। मैंने पाया कि लयबद्ध तीव्र कंपन तनाव से मुक्त होने का सबसे सरल और प्रभावकारी उपाय है। हां, लोगों को शुरू में अपने शरीर को कंपाना थोड़ा अटपटा जरूर लगता है लेकिन जल्दी ही उन्हें इसमें मजा आने लगता है और यह प्रभावशाली ढंग से काम भी करता है।

कई नर्सों ने मुझे बताया कि जब वे अपने आपको कभी लिफ्ट में या कहीं और अकेला पाती हैं तो कंपन का प्रयोग करने लगती हैं और खुद को एकदम से तरो-ताजा पाती हैं। डॉक्टर तो अब यहां तक कहते हैं कि वे कंधों और पीठ के तनाव वाले मरीजों को भी नियमित दस-पंद्रह मिनट कंपन का प्रयोग करने का सुझाव देते हैं और उसके अच्छे परिणाम भी आ रहे हैं।

कंपन इतना कारगर क्यों है?

शारीरिक श्रम, मानसिक उहापोह या आघात अथवा तनाव-जन्य परिस्थितियों से जो हारमोन हमारे शरीर में स्रावित होते हैं वे आसानी से तिरोहित नहीं होते। उनसे अपने शरीर को साफ करने के लिए कुछ विधायक करना जरूरी होता है—और शरीर को अच्छी तरह से हिलाकर कंपित करना उसके लिए एक कारगर उपाय है।

आपने कितने ही पशुओं को देखा होगा कि दिन में कई बार वे अपने को झटककर एक कंपन देते हैं। वे दरअसल अपनी शारीरिक प्रज्ञा के अनुसार अपने शरीर को स्ट्रेस हारमोंस से स्वच्छ कर रहे होते हैं। इसीलिए वे हर समय तरोताजा बने रहते हैं।

हमारा शरीर भी इस तथ्य को भली-भांति जानता है। लेकिन सभ्यता के क्रम में हमने जो बहुत सी स्वाभाविक चीजें भुला दी है उनमें से एक यह क्रिया भी है।

कंपन के इस प्रयोग के अपनी वर्कशॉप्स में इतने सुंदर परिणाम देखते हुए मैंने जब इस विषय में आगे शोध करनी शुरू की तो मेरा परिचय ओशो कुंडलिनी ध्यान से हुआ जोकि भारतीय मनीषी ओशो द्वारा तैयार की गई ध्यान की एक सक्रिय विधि है। इस विधि का आधार पंद्रह मिनट का तीव्र लयबद्ध कंपन है। लेकिन यह वहीं नहीं रुकती। यह शारीरिक तनाव को शिथिल करने के बाद उससे आगे भी जाती है। प्रयोग करने वाले को शिथिलता के बाद कुछ और विधायक भी देती है। मैं जिन लोगों के साथ स्ट्रेस मेनेजमेंट का काम करती हूं, उनके साथ मैंने इस विधि का प्रयोग किया और सभी स्तब्ध रह गए कि मात्र एक घंटे के प्रयोग से ऐसा लगा जैसे एक लंबी थेरेपी से गुजरकर बिलकुल ताजा हो गए हों। अब यह हमारे कोर्स का एक प्रमुख हिस्सा है।

डॉ. लिया यूस्टन
एल्फा क्लिनिक, म्यूनिख

(संपादकीय, पृष्ठ 7 से शेष)

एक और प्रश्न है पंडितजी का—ओशो को ऐसी क्या मजबूरी आ गई थी कि जिस संबोधन के साथ वे पूरा जीवन रहे (जो कि तथ्यात्मक रूप से गलत है) उसे छोड़ना पड़ा। जिस भगवान संबोधन की उन्होंने इतनी सुंदर व्याख्याएं कीं, उसीकी भर्त्सना करने की उनकी क्या मजबूरी थी?

इस प्रश्न के माध्यम से पंडितजी किन्हीं षडयंत्रकारियों द्वारा ओशो पर दबाव बनाए जाने की अपनी थ्योरी को पुख्ता कर रहे हैं। लेकिन उनसे एक प्रतिप्रश्न है—पंद्रह वर्ष आचार्य की तरह संबोधित किए जाने के बाद 1970 में ओशो को कौनसी मजबूरी आ गई थी उस संबोधन को त्यागने की? यहां जो भी तर्क वह देंगे, वही तर्क भगवान संबोधन को त्यागने पर भी लागू होते हैं। हां, बस इतना है कि भगवान शब्द आचार्य से कहीं अधिक लोडेड है और उसे छोड़ने में भी उतना ही वजन लगाना पड़ा—उस शब्द की कड़ी भर्त्सना करके।

ओशो चेतना के शुद्ध स्वरूप के अनुभोक्ता हैं—असीम व अपरिभाषित। कोई विशेषण उन्हें बांध नहीं सकते। आप जिस भी विशेषण से उन्हें पुकारते हैं, केवल अपने चित्त को दर्शाते हैं—ओशो उससे अछूते रह जाते हैं। ओशो अपने कार्य के लिए हर चीज का उपयोग बस एक युक्ति की तरह करते हैं—हर चीज से अस्पर्शित रहते हुए। हर चीज में स्वयं उनकी देह भी आ जाती है, और देह से जुड़े विशेषण भी। जब ओशो सब नाम और संबोधन छोड़कर मात्र ओशो हो जाते हैं तो अपने कार्य को अंतिम सोपान में प्रवेश करा देते हैं—जहां शुद्ध झेन का कोरा आकाश है।

अब चैनलों के एंकरों और उनके दुलारों द्वारा मालाएं लटकाकर ओशो को 'भगवान भगवान' कहकर संबोधित किए चले जाना ओशो के कार्य की बहती धारा के सामने एक बंजर चट्टान बनकर खड़े जा जाने जैसा ही है।

इन चैनलों पर कुछ वे लोग भी जाते हैं जो ओशो के सान्निध्य में लंबे समय रहे हैं, वे इस विषय में कुछ नहीं कहते यह देखकर आश्चर्य होता है। शायद उनकी मजबूरियां हों। लेकिन ऐसी भी क्या मजबूरी!

खैर, अंत में पते की एक बात—लूज़ टॉक इसलिए घातक होती है क्योंकि हम में से अधिकांश को लूज़ हियरिंग की, लचर सुनने की बीमारी होती है। हम अधकचरा सुनते हैं और अपनी धारणाएं बना लेते हैं—खासकर यदि जो हमने सुना, वह हमारे संस्कारजन्य मंतव्यों की तारें छेड़ दे। इन संस्करों का गुरुत्वाकर्षण इतना बड़ा है कि यदि हम सजग न हों तो हम बामुश्किल चार कदम चलेंगे कि वह हमें छः कदम पीछे खींच लेगा।

इसके लिए ओशो एक औषधि हमें देते हैं—राइट लिसनिंग, सम्यक श्रवण। कुछ भी सुनें तो तुरंत पक्ष या विपक्ष में मंतव्य न बना लें। उस पर विवेकपूर्ण मंथन करें। एक शोध से गुजरें और निष्पत्ति को किसी पहले से मौजूद खांचे में फिट करने की कोशिश न करें, उसे अपनी नग्नता में प्रकट होने दें। फिर, हाथ कंगन को आरसी क्या!

एक निवेदन

यह सभी मित्र जानते हैं कि गत दो वर्ष से यैस ओशो पत्रिका अपने ऑनलाइन संस्करण में सभी तक निशुल्क पहुंच रही है। हालांकि इसके निर्माण में आर्थिक व्यय तो होता ही है, लेकिन हम चाहते हैं कि यह ऐसे ही निशुल्क बनी रहे ताकि लाखों मित्र जैसे इसका आनंद ले रहे हैं व आगे से आगे शेयर कर रहे हैं वह ऐसे ही चलता रहे। यह हम सबका आनंद है।

जिन मित्रों को सुविधा हो और भाव भी हो कि वे इसके व्यय में कुछ सहयोग देना चाहते हैं वे पत्रिका का कोई पृष्ठ प्रायोजित करके ऐसा कर सकते हैं—जैसा कि पृष्ठ संख्या 2, 3 व 39 पर आपने देखा होगा। इसका कोई अधिक मूल्य भी नहीं है।

वैसे, कोई चिंता न लें, पत्रिका तो आती ही रहेगी। आप आनंद लेते रहें, शेयर करते रहें।

यदि पृष्ठ प्रायोजित करने का भाव हो तो मुझसे 9372268330 पर संपर्क कर सकते हैं।

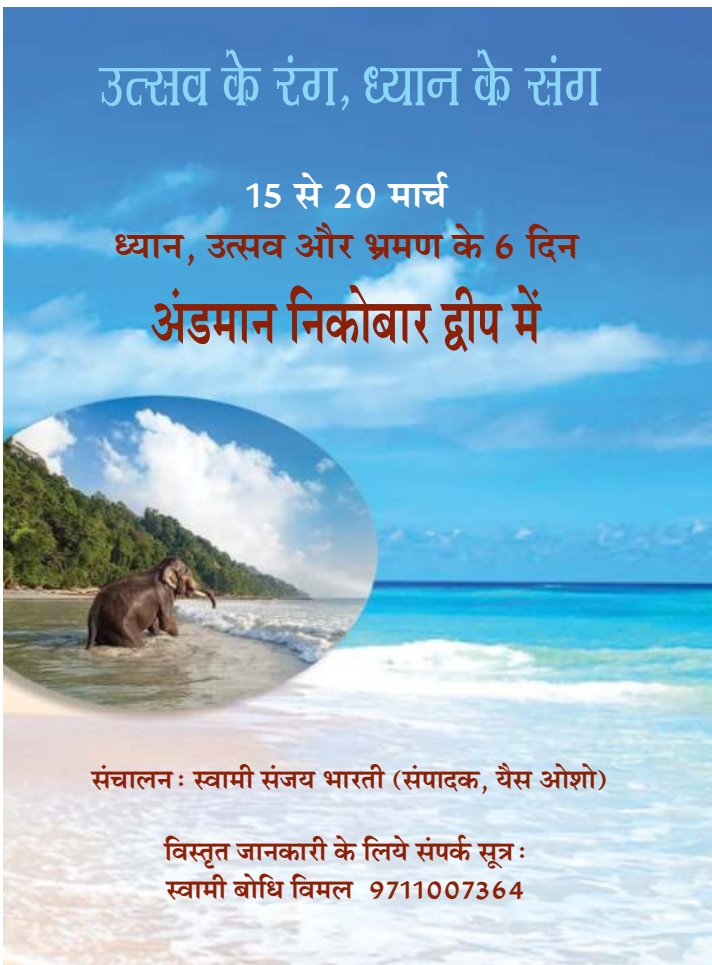

डॉ. आत्मो मनीष, एम एस

कैसे बैठते हैं, कितना बैठते हैं इसका खयाल रखें

ऐसा क्या है जो हम में से हर कोई नजरंदाज कर देता है और अपनी उस स्थिति के प्रति अगर हम जागरूक नहीं हैं तो देर-सबेर हमें उसकी कीमत चुकानी ही पड़ती है? मेरे कई मित्र इस लापरवाही का नतीजा भुगत रहे हैं। आइए जानें ऐसा क्या है जिस पर हम बिल्कुल ध्यान नहीं देते।

मेरे एक मित्र फिल्म एडिटर हैं, एक संगीतज्ञ हैं बांसुरी बजाते हैं, एक वर्क .फ्रॉम होम में व्यस्त रहते हैं, एक दुकान पर घंटो समय बिताते हैं, एक मित्र बैंक में कैश काउंटर चलाते हैं और एक मित्र का ड्राइवर है जो अधिकतर समय कार चलाने में व्यतीत करता

पूरे विश्व में साठ लाख लोग प्रति वर्ष शारीरिक व्यायाम के अभाव में, और लम्बे समय तक बैठे रहने के कारण मर जाते हैं। यह आंकड़े दिन प्रतिदिन बड़ते जा रहे हैं। अच्छी बात यह है कि इन समस्याओं से बचने के तरीके बहुत आसान हैं।

है। इन सभी लोगों में एक बात समान है। सभी लोगों का कार्य देर तक बैठने से संबंधित है। इन लोगों की समस्या का कारण तो एक है ,वह है देर तक एक अवस्था में बैठना, पर शारीरिक समस्यायें अलग अलग हैं। किसी की गर्दन दुखती है किसी का कंधा, किसी की पीठ, किसी को बवासीर है तो किसी को सेक्स से सम्बंधित समस्यायें। मैं एक चौकीदार को जनता हूं जिसे यह सारी समस्यायें एक साथ हैं। कई महिलायें हैं जिन्हें गर्भ तंत्र से संबंधित परेशानियां हैं।

आपको यह जान आश्चर्य हो सकता है ये सभी शारीरिक समस्यायें देर तक बैठने से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। हम एक ऐसी सदी में जी रहे हैं जहां लगभग हर कार्य में लंबे समय तक बैठना पड़ सकता है, कार्य के हिसाब से यह एक गतिहीन सदी है। अगर हम दस पंद्रह मिनट ठीक पोश्चर में लगातार बैठते हैं तो कोई समस्या नहीं होनी चाहिए, पर इससे ज्यादा बैठना कई बीमारियों और शारीरिक परेशानियों को जन्म दे सकता है।

कुछ समय के लिए बैठना शारीरिक और मानसिक तनाव को दूर कर सकता है, कार्य करने में मदद कर सकता है—यह स्वाभाविक है। लेकिन आज के युग में लम्बे समय तक बैठना जैसे कोई सहज प्रक्रिया जैसा हो गया है और यह शरीर के लिए घातक है, हमारा शरीर ज्यादा देर बैठने के लिए नहीं बना है। हमारा शरीर गति देने के लिए बना है।

हमारे शरीर में तीन सौ पचास से भी अधिक जोड़ हैं और सात सौ से अधिक मांसपेशियां हैं। ये सब जोड़ और मांसपेशियां इसलिये हैं कि गति में सहायक हो सकें। हमारा शरीर बैठने से ज़्यादा गति देने के लिए अधिक बना है। हमारे शरीर का रक्त प्रवाह हमारे शरीर की गति पर निर्भर करता है, हमारे शरीर के नर्वस सिस्टम का स्वास्थ्य भी हमारे शरीर की गति से संबंधित है। अगर हम लम्बे समय तक बैठते हैं तो हमारे शरीर में रक्त धीमी गति से बहता है, मुख्यतया हिप के जोड़ के क्षेत्र में यह बहुत धीमा हो जाता है। अगर हम अपनी इस अवस्था को नजर अंदाज कर लम्बे समय तक बैठे रहते हैं और ऐसा लगातार कई दिनों तक चले तो तंत्रिकाएं दबाने लगती हैं और इस क्षेत्र में कम रक्त के प्रभाव से बवासीर, पाइल्स, सेक्स से संबंधित समस्यायें, स्त्रियों में गर्भाशय से संबंधित समस्यायें हो सकती हैं।

दूसरा सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र है हमारी रीढ़। जब हम टेबल पर बैठ कार्य करते हैं तो हमारी कमर और गर्दन आगे की और ओर झुक जाती हैं जिससे न सिर्फ़ कमर के लिगामेंट्स, मांसपेशी और डिस्क पर ज़ोर पड़ता है बल्कि हमारे शरीर के सभी भीतरी अंगो की भी कार्य क्षमता क्षीण होती है जिसमें प्रमुख हैं लंग्स। आगे झुकने से लंग्स के ऊपरी हिस्से में सतत दबाव पड़ता है जिससे शरीर में आने वाली ऑक्सिजन कम हो जाती है और नतीजा होता है जल्दी थकान और कार्य में एकाग्रता की कमी।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान की खोजें बताती हैं कि लम्बे समय तक बैठना कैंसर, हृदय रोग, डायबिटीस, उच्च रक्तचाप जैसी समस्याओं को जन्म दे सकता है। पूरे विश्व में साठ लाख लोग प्रति वर्ष शारीरिक व्यायाम के अभाव में, और लम्बे समय तक बैठे रहने के कारण मर जाते हैं। यह आंकड़े दिन प्रतिदिन बड़ते जा रहे हैं। अच्छी बात यह है कि इन समस्याओं से बचने के तरीके बहुत आसान हैं। अगर आप लम्बे समय तक बैठ कर कार्य करते हैं तो अपने फ़ोन में हर आधे घंटे या कम समय का टाइमर लगा दें, यह अलार्म आपके शरीर को व्यायाम करवाने और शरीर को कुछ गति देने के लिए होगा, समय-समय पर अपने टेबल पर झुके शरीर को सीधा करें। नियमित व्यायाम और बीच-बीच में टहलना उत्तम होगा। अगर आप लम्बे समय तक बैठने के दुष्परिणामों के प्रति जागरूक हैं तो कोई राह निकल ही लेंगे, जो एक सरल राह होगी। सुबह या शाम अपने दैनिक कार्यक्रम में एक लंबी सैर जोड़ सकें तो वह बहुत लाभदायी हो सकती है।

दिन में जब भी कभी समय मिल सके, कुछ मिनट के लिये एक छोटा सा नृत्य कर लें, या हो सके तो अपने शरीर को शेक कर लें। ये ऐसी क्रियाएं हैं जिन्हें ओशो ने अपने ध्यान की सक्रिय विधियों में समाहित किया है और अब विश्व में कई डॉक्टर इन्हें एक स्वस्थ जीवन शैली ले लिये अनिवार्य बता रहे हैं। इनसे आपको शारीरिक तल पर ही नहीं, भावनात्मक व आत्मिक तल पर भी लाभ होगा।

सुंदर तो यह होगा कि अपने दिन में ध्यान की किसी एक सक्रिय विधि को सम्मिलित कर लें। ये विधियां ओशो ने यही ध्यान में रखते हुए निर्मित की हैं कि हमारे शरीर की ऊर्जा कैसे गतिमान हो।

मां एक द्वार है

कच्चे धागों में सबसे नाजुक रिश्ता होता है गर्भस्थ शिशु और मां का। मनुष्य जीवन की पूरी नींव इस समय डाली जाती है। प्रारंभिक नौ महीनों में यदि शिशु को ध्यान की ऊर्जा मिले और ध्यानपूर्ण लोगों के बीच उसका जन्म हो तो उसकी सारी जीवन यात्रा बदल जाए।

जर्मन संन्यासिनी मा देव कांतों ने ऐसा ही प्रयोग किया अपने शिशु के साथ। गर्भाधान से लेकर उसके जन्म तक वह जिस ध्यान प्रक्रियाओं से गुजरी है, वे सब अनूठी हैं।

कांतो कई वर्षों से ध्यान करती रही है, ओशो के शब्दों को जीवन में उतारने की कोशिश करती रही है। रसीली, कोमल, स्नेहमयी कांतो ने ठान लिया कि 'मैं जब किसी बच्चे की मां बनूंगी तो एक खास वातावरण में उसका बीज बोऊंगी। उसका पिता कौन होगा, नौ महीने मेरे आसपास कौन स्त्री-पुरुष होंगे, यह सब मैं ही तय करूंगी।'

बहुत मृदुता से कांतो अपने प्रयोग का वर्णन करती है : 'जिस प्रकार मिट्टी में बीज बोने से पहले हम उसमें खाद डालते हैं, जमीन तैयार करते हैं वैसे ही बच्चे के गर्भ धारण करने से पहले मन की, शरीर की भूमि तैयार करनी जरूरी है।

'मैं यह भी चाहती थी कि मेरे बच्चे के जन्म के समय प्रेमपूर्ण स्त्री-पुरुष उसके आसपास हों और वह बच्चा तय करे कि उसे किसके पास रहना है। मैं एक द्वार हू

'खलिल जीब्रान की एक कविता मेरे जेहन में उतर गई थी—

''तुम्हारे बच्चे तुम्हारे नहीं हैं, वे तुम्हारे माध्यम से अवतरित हुए हैं। उनकी अपनी इच्छाएं हैं, अपना जीवन है। तुमने उन्हें शरीर दिया है, आत्मा नहीं। उनकी आत्मा भविष्य के भवन में रहती है और तुम अतीत के मकान में रहते हो। तुम उनकी आत्मा का पोषण नहीं कर सकते क्योंकि तुम बीत चुके हो।''

'यह कविता मेरे लिए बहुत अर्थपूर्ण रही। मैंने देखा कि मैं सचमुच अतीत का हिस्सा हू

'खलील जिब्रान की कविता पढ़ने के बाद मैंने मां बनने का खयाल छोड़ दिया। उसके बाद मेरा ओशो से परिचय हुआ। मैंने संन्यास लिया, भावों का रेचन किया। जैसे-जैसे मेरा रेचन होता गया, मैं ताजगी से भरती चली गई। फिर मैंने अपने भीतर ऐसे बिंदु को स्पर्श किया जहां मुझे लगा कि अब मैं अपने बच्चे को कुछ नया और ताजा दे सकती हू
मैं किसी पावन आत्मा का वाहन बन सकती हू

कांतो के आभा मंडल में एक पावनता की महक आती है। अन्यथा इस प्रकार के विचार उसके मनस में प्रवेश न करते।

'तुम्हारे पति भी इसी भावदशा में थे जिसमें तुम हो?' मैंने उससे पूछा।

'मेरे पति मेरी बेटी के पिता नहीं हैं,' कांतो बड़ी निर्मलता से बोली।

'क्या?' मेरे भारतीय संस्कार एकदम कंपित हो गए। और कांतो के लिए जैसे यह कोई मसला ही नहीं था। वह सहज मन से बोली—

'मेरे पति को पिता नहीं बनना था, इसलिए मैंने उन पर दबाव नही डाला। मैंने ऐसे पुरुष को ढूंढा जिसके हृदय में आने वाले शिशु के लिए इतना प्रेम और सम्मान था कि वह उसका माध्यम बनने के लिए तैयार हो गया।'

'जब वह गर्भ में थी तब भी तुमने कोई खास ध्यान या कुछ प्रयोग किए?'

कांतो ने कहा, 'मेरा सारा जोर इस बात पर रहता कि मैं अपने भीतर कोई अतीत का मुर्दा तत्त्व न सम्हालूं। इसलिए रोज-रोज मैं नई बनने की कोशिश करती थी। ओशो की ऊर्जा से और दिव्य ऊर्जा से अपने आपको जोड़ती थी जिससे कि बच्चा दिव्य आशीष में पले।

'आखिरी महीनों में मैं अपने संन्यासी मित्रों के साथ रहने लगी। वह घर एक छोटा-सा कम्यून जैसा है। जब मुझे प्रसव पीड़ा शुरू हुई तो हमने कोई भी कृत्रिम उपाय नहीं किए जिससे कि जन्म शीघ्रता से हो। बच्चे को बाहर आने में चार-पांच दिन लगे। उन चार-पांच दिन तक सब संन्यासी उत्सव मना रहे थे। पूरा घर फूलों से सजाया हुआ था। नृत्य-गान, सुगंध, मिष्ठान आदि बनाए गए थे। हमने किसी डाक्टर और नर्स को नहीं बुलाया। इतनी नाजुक घड़ी में मैं बाह्य व्यक्ति का हस्तक्षेप नहीं चाहती थी।

'बच्चे के जन्म के विषय में मैंने एक किताब पढ़ी थी जिसमें कहा गया है कि जन्म की प्रक्रिया समुंदर की लहरों की तरह है। जैसे लहरों पर लहरें चली आती हैं और अंततः किनारे पर जाकर फूटती है वैसे ही जब पीड़ा की लहरें उठें तो उनके साथ एक हो जाना, लहरों पर सवार हो जाना। इससे बच्चा सरलता से बाहर आ जाएगा। मैंने वही किया। लहरों में डूबती चली गई। हर पीड़ा के साथ मैं 'ओशो,' और 'यैस' चिल्लाती थी जिससे मेरे भीतर स्वीकार भाव पैदा हो जाता। अंततः मैं पूरे लेट गो की भावदशा में उतर गई और बच्चा कब बाहर आया, मुझे पता ही नहीं चला।'

'तो वह जब बाहर निकली तब नृत्य-गान शिखर पर पहुंच गया होगा,' मैंने कांतो की लय को महसूस कर पूछा।

'नहीं, जब जन्मने की प्रक्रिया हो रही थी तब मेरे आसपास लोग नाच-गा रहे थे। और जैसे ही वह पैदा हुई, सब मौन हो गए और ध्यान में उतर गए। उसके बाहर निकलने में इतना प्रसाद था और स्तब्धता थी कि लोग उसे देखते ही अवाक हो गए। वह भी रोयी नहीं और न ही हमने उसे रुलाने की चेष्टा की। वह बड़ी शांति लेकर प्रकट हुई।

'और न केवल उस क्षण बल्कि आज तक, अब वह छह महीने की है, वह एक बार भी नहीं रोयी। वो या तो हंसती रहती है या मौन रहती है। उसे देखा तो मुझे लगा कि यह तो बुद्ध प्रकट हुआ है। मैंने उस गुलाब की पांखुरी को अपने हृदय के पास लिया। उसकी धड़कन से अपनी धड़कन को मिलाया। उसकी नाभि रज्जू देर तक स्पंदित हो रही थी। ओशो ने कहा है कि उसे एकदम नहीं काटना चाहिए, उससे बच्चे के चित्त पर गहरी चोट पड़ती है। वैसा ही हमने किया। जब उसका स्पंदन रुक गया तब उसे काटा।

'ओशो ने यह भी कहा है कि लड़की की पहली नजर उसके पिता से मिलनी चाहिए ताकि जीवन भर पुरुष ऊर्जा से उसका तालमेल रहे। मैंने अपनी बेटी के साथ यही किया। जब उसने आंख खोली तब उसके पिता उसके सामने खड़े हुए थे।'

'कांतो, बड़े नाजों से पैदा हुई अपनी इस बेटी का नाम क्या रखा?'

'उंदीना। उंदीना का अर्थ है : जल परी। यह आधी मानवीय होती है, आधी जलचर। उंदीना की एक और खूबी यह है कि उसने मेरा दू
सहेली जो कि निरंतर मेरे साथ थी, उसके स्तनों से वह प्राण ऊर्जा लेती है। मैंने जब भी दू

'पहले तो तुझे बड़ा दुख हुआ। मुझे उसे दू
लेकिन मैं जल्दी ही सम्हल गई। यह मेरा पहला पाठ था—पकड़ छोड़ने का प्रशिक्षण। मैंने अपने दुख को ध्यान में बदल दिया और उसकी इच्छा को सहारा दिया। जिसमें वह खुश है, उसी में मेरी खुशी है।

'मैंने अपने बचपन के अनुभव से सीखा है कि बच्चा जितना अलग-अलग लोगों के पास रहता है उतना ज्यादा स्वतंत्र, ज्यादा विकसित होता है। उसके अनुभव में अंतराल आ जाता है। बड़े लोग उसका शोषण नहीं कर पाते। इसलिए मैं उसे अपनी सहेली के पास छोड़कर भारत आ गई हू
का प्यार मिलेगा।'

कांतो की समझ और अंतर्दृष्टि के पीछे जरूर कोई गहरे जख्म होने चाहिए। बच्चे के बारे में इतनी संवेदनशील वह कैसे बन गई?

जब मैंने धीरे से कुरेदा तो कांतो की आंखों में वे स्मृतियां अब भी आंसू बनकर उभर आईं। उसने कहा, 'मैं छह हफ्ते की थी तब मेरी मां चल बसी। बाद में मेरे पिता ने दू
कभी सौतेली मां के पास रहती। जब मेरी नानी का घर छोड़कर मैं पहली बार अपने पिता के घर आई तो तीन हफ्ते तक मैं दरवाजे पर खड़ी रोती रहती कि मुझे यहां नहीं रहना, वापस जाना है। आखिर एक दिन पिता जी ने तंग आकर मेरा गला दबाया और कहा कि यदि मैं रोना बंद नहीं करूंगी तो वे मुझे मार डालेंगे। उस क्षण मुझे पूरा यकीन हुआ कि ये मुझे मार सकते हैं। और मैं इतनी डर गई कि मैंने अपना रोना बिलकुल दबा दिया। उस वक्त मैं डेढ़ साल की थी। लेकिन मेरे शरीर के रोएं-रोएं में भय समा गया। भीतर मांस-मज्जा में ये सब स्मृतियां हैं। जब मैंने सम्मोहन के गहरे प्रयोग किए, बॉडी वर्क किया तब मुझे यह घटना फिर से याद आई। आज भी मेरे अंदर दबा हुआ भय है।

'शायद इसीलिए मैं ऐसी स्थिति में एक बच्चे को जन्म देना चाहती थी जो बिलकुल स्वस्थ, प्रेमपूर्ण और स्वतंत्र हो। शायद अपनी बेटी के रूप में मैं ही दुबारा पैदा होना चाहती थी, कौन जाने।'

दीपाली के जीवन में एक नया मोड़...

विज्ञान भैरव तंत्र की एक विधि पर आधारित कहानी

अपने पापा की तरह दीपाली को भी पढ़ने का बहुत शौक था। बाल पत्रिकाओं के साथ ही वह अमर चित्र कथा के कामिक्स भी बहुत मन लगाकर पढ़ा करती। उसके घर के सामने एक बुजुर्ग सज्जन की लोहे की दुकान थी। आम तौर से बुजुर्ग लोग खाली समय में अखबार पढ़ा करते हैं। लेकिन उस समय वे कोई पुस्तक या पत्रिका पढ़ा करते थे। इसीलिये दीपाली को वे बहुत अच्छे लगते थे। कभी खेलते समय बच्चों की गेंद उनकी दुकान पर चली जाती तो गेंद लेने आये बच्चे पर वे कभी क्रोध नहीं करते थे। एक दिन दीपाली उस दुकान पर गेंद उठाने गई तो उसने देखा कि वे किसी पत्रिका पढ़ने में तल्लीन हैं । पढ़ने की शौकीन दीपाली ने पूछा, दादाजी, क्या मैं भी इसे पढ़ सकती हूं? नहीं, उन्होंने उत्तर दिया। क्यों, दीपाली ने पूछा। उन्होंने कहा, यह आध्यात्मिक पत्रिकायें हैं, बच्चों के लिये नहीं हैं। आध्यात्म क्या होता है? दीपाली ने पूछा। मैं कौन हूं की खोज को आध्यात्म कहते हैं उन्होंने कहा। अरे! आपको पता ही नहीं कि आप कौन हैं? क्या इन पत्रिकाओं को पढ़ने से पता लग जाता है मैं कौन हूं? दीपाली ने जिज्ञासा की। नहीं, उन्होंने मुस्कुराकर कहा, तुम्हारे जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर कभी दूसरों से नहीं मिल सकते हैं।

उनकी इस बात पर दीपाली को बहुत आश्चर्य हुआ। उसे तो यही लगता था कि जो लोग आयु में उससे बड़े हैं उनके पास हर प्रश्न का उत्तर होना चाहिये। ऐसा कैसे हो गया है कि इतनी आयु होने के बाद भी दादाजी को नहीं पता कि मैं कौन हूं। जिस दिन मुझे पता चल जायेगा कि मैं कौन हूं, उस दिन मैं जाकर दादाजी को बता दूंगी, उसने सोचा।

दीपाली की मम्मी अपने माता-पिता की एकमात्र संतान थीं। अपनी एकमात्र पुत्री की पहली संतान होने के कारण दीपाली नाना-नानी की सभी आशाओं का केंद्र थी। उनकी कामना थी कि दीपाली मेडिकल क्षेत्र में उच्च अध्ययन करे, लोगों की सेवा करके नाना-नानी का नाम रोशन करे। इसलिये बचपन से उसके लिये इस तरह का परिवेश निर्मित किया गया था जो उसे इस दिशा में आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करता रहे। सभी की इच्छाओं का सम्मान रखते हुए दीपाली ने जीवविज्ञान से बारहवी की परीक्षा अच्छे अंकों से उत्तीर्ण की। चिकित्सा की डिग्री के लिये होने वाली प्रवेश परीक्षा में वह पूरी तैयारी के साथ सम्मिलित हुई। जिस दिन परीक्षा का परिणाम घोषित होना था, उसके घर नाना-नानी के अतिरिक्त कई और निकट के संबंधी एकत्रित हो गये थे। लेकिन यह परिणाम सभी की आशाओं के विपरीत आया था। वह दीपाली जो अभी तक किसी भी परीक्षा में असफल नहीं हुई थी, इस बार उत्तीर्ण न हो सकी थी।

सभी लोग स्तब्ध रह गये, दीपाली को असफल होने की आदत नहीं थी, इसलिये परीक्षा के इस परिणाम को स्वीकार कर पाने में उसे कुछ समय लगा। परिवार के लोगों ने उसका हौसला बढ़ाते हुये समझाया कि उसे अभी एक प्रयास और करना चाहिये। लेकिन दीपाली ने कहा कि दूसरे प्रयास की तैयारी से पहले उसे सोचने का समय चाहिये। वह सोचने लगी कि उसकी सहेलियां या अनेक परिचित लोग जो उसे प्रोत्साहित या हतोत्साहित करते थे, क्या उन्होंने कभी उसकी अभिरुचि को पहचानने का कोई प्रयास किया था? क्या वे उसकी क्षमता को जानते थे? उसे समझ आया कि उत्साहित करने वालों के पक्ष में और हतोत्साहित करने वालों के विपक्ष में भाव आरोपित करने के स्थान पर मुझे अपने भीतर झांक कर यह खोजना चाहिये कि मैं किस क्षेत्र में आगे बढना चाहती हूं।

इस बारे में विचार करते हुए उसे दादाजी की बात याद आई, तुम्हारे जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर कभी दूसरों से नहीं मिल सकते हैं। आज उसे समझ आ गया कि दूसरों के कहने पर अपने जीवन-पथ का निर्धारण करना

उसकी भूल थी। खुद को सांत्वना देते हुए उसने सोचा कि किशोरावस्था में ऐसा हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अगर मेरे अनुसार यह परीक्षा देना राह से भटक जाना था तो अपने लिये उचित दिशा की खोज मुझे ही करनी पड़ेगी। उसने खूब विचार किया तो ज्ञात हुआ कि उसे गणित और भौतिक विज्ञान अधिक आकर्षित करते हैं। इसलिये उसने अपनी दिशा को बदल दिया, गणित लेकर फिर से बारहवीं का फॉर्म भरा, अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुई। स्नातक करके एम.सी.ए की प्रवेश परीक्षा पास की, एक प्रतिष्ठित संस्थान से डिग्री ली और एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में कार्य करने लगी।

कुछ समय बाद उसका विवाह एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर के साथ हो गया। एक दिन उसके पति ने उससे पूछा कि मेडिकल लाइन के परिचित रास्ते को छोड़कर कंप्यूटर इंजीनियर बनने के अपरिचित रास्ते पर चलने का साहसिक निर्णय वह किस तरह से ले पाई? दीपाली ने बताया, जब भी कोई और व्यक्ति आपको चलने के लिये कोई रास्ता दिखाता है, तो वह उस व्यक्ति का अधूरा सपना भी हो सकता है। जिस पर चल कर शायद उसे संतुष्टि मिली होती। लेकिन वह रास्ता आपके अनुरूप हो यह अनिवार्य नहीं है। हम कोई और रास्ता भी अपना सकते हैं। आप किसी भी रास्ते पर चलें आपको हौसला बढ़ाने वाले भी मिलते हैं और दिग्भ्रमित करके आपके जोश को ठंड़ा करने वाले भी। यह आपकी समझ है कि दोनों प्रकार के लोगों की राय को खुद के ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिये। आपका जीवन आपके विवेकपूर्ण फैसलों से संचालित होना चाहिये।

दादाजी के कहे अनुसार अभी तक मैं यह तो नहीं खोज पाई हूं कि मैं कौन हूं, लेकिन उनकी एक बात—कि मेरे जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर कभी दूसरों से नहीं मिल सकते हैं—ने मेरी बहुत सहायता की है। दूसरों के द्वारा दिखाये गये रास्ते के स्थान पर जीवन को अपनी पसंद के अनुरूप जीने का साहस करने के इस निर्णय ने मेरे जीवन को सुगम कर दिया है। अगर मैं दूसरों की राय की समीक्षा और विश्लेषण ही करती रहती तो इस अवस्था में कभी न पहुंच पाती। कभी इस पक्ष में झुक जाती तो कभी उसके विपरीत कही गई बातों के समर्थन में तर्कों की खोज करने लगती, कोई निर्णय न ले पाती। मैंने जाना कि मेरे मन में उठने वाले भावों का स्रोत मेरे भीतर ही कहीं है। इसलिये जब तक मेरा ध्यान इस केंद्र पर नहीं रहेगा, मैं कभी नहीं जान सकूंगी कि मैं कौन हूं। दूसरों की बातों पर ध्यान लगाये रखना, उनसे प्रभावित बने रहना ही मैं कौन हूं की खोज में सबसे बड़ी रुकावट है। अपनी दृष्टि को पर-उन्मुख से मोड़कर आत्म-उन्मुख करना ही मैं कौन हूं की खोज का मार्ग बन सकता है। इसलिये अब मैं कह सकती हूं—जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करो, बल्कि केंद्रित रहो। ■

स्रोत की ओर गति कर जाओ

जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करो, बल्कि केंद्रित रहो।

अगर हमें किसी के विरुद्ध घृणा अनुभव हो या किसी के लिए प्रेम अनुभव हो तो हम क्या करते हैं? हम उस घृणा या प्रेम को उस व्यक्ति पर आरोपित कर देते हैं। अगर तुम मेरे प्रति घृणा अनुभव करते हो तो उस घृणा के ही कारण तुम अपने को बिलकुल भूल जाते हो और मैं तुम्हारा एकमात्र लक्ष्य या विषय बन जाता हूं। वैसे ही जब तुम मुझे प्रेम करते हो तो भी तुम अपने को बिलकुल ही भूल जाते हो और मुझे अपना एकमात्र विषय बना लेते हो। तुम अपनी घृणा को, प्रेम को या जो भी भाव हो, उसे मुझ पर प्रक्षेपित कर देते हो। उस दशा में तुम आंतरिक केंद्र को भूल जाते हो और दूसरे को अपना केंद्र बना लेते हो।

यह सूत्र कहता है कि जब किसी के प्रति घृणा, प्रेम या और कोई भाव पक्ष या विपक्ष में पैदा हो तो उसको, उस भाव को उस व्यक्ति पर आरोपित मत करो, बल्कि स्मरण रखो कि उस भाव का स्रोत तुम स्वयं हो।

इस विधि के लिए विशेष रूप से इस बात को ध्यान में रख लो कि दूसरों पर तुम जो भी भाव प्रक्षेपित करते हो उसका स्रोत सदा तुम्हारे भीतर है। इसलिए जब भी कोई भाव पक्ष या विपक्ष में उठे तो तुरंत भीतर प्रवेश करो और उस स्रोत के पास पहुंचो जहां से यह भाव उठ रहा है। स्रोत पर केंद्रित रहो, विषय की चिंता ही छोड़ दो। किसी ने तुम्हें तुम्हारे क्रोध को जानने का मौका दिया है, इसके लिए उसे तुरंत धन्यवाद दो और उसे भूल जाओ। फिर आंखें बंद कर लो और अपने भीतर सरक जाओ। और उस स्रोत पर ध्यान दो जहां से यह प्रेम या क्रोध का भाव उठ रहा है।

भीतर गति करने पर तुम्हें वह स्रोत मिल जाएगा, क्योंकि ये भाव उसी स्रोत से आते हैं। घृणा हो या प्रेम, सब तुम्हारे स्रोत से आता है। इस स्रोत के पास उस समय पहुंचना आसान है जब तुम क्रोध या प्रेम या घृणा सक्रिय रूप से अनुभव करते हो। इस क्षण में भीतर प्रवेश करना आसान होता है। जब तार गर्म है तो उसे पकड़कर भीतर जाना आसान होता है। और भीतर जाकर जब तुम एक शीतल बिंदु पर पहुंचोगे तो अचानक एक भिन्न आयाम, एक दूसरा ही संसार सामने खुलने लगता है।

ओशो, *तंत्र-सूत्र, प्रवचन 15*

सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में ओशो हर संध्या साधकों के एक छोटे से समूह से मिलते थे, जिसमें वे लोग होते जो सन्यस्त होना चाहते थे या किसीकी कोई समस्या होती। इस मीटिंग को दर्शन कहा जाता था। दर्शन डायरियों के पन्नों में सिमटे, गुरु-शिष्य के बीच घटे ये संवाद क्षण, ओशो के सर्वदा छिपे उस आयाम को प्रकट करते हैं जो अधिकतर मित्रों के लिए अनजाना ही है। इन दर्शन डायरियों को मा प्रेम मनीषा व उनकी सहयोगी टीम ने दर्ज किया था, ज्यूं का त्यूं!

श्वास के साथ छोटा-सा प्रयोग

एक युवती को ओशो यह प्रयोग देते हैं :

ओशो : एक काम करना शुरू करो और यह तुम्हारी ऊर्जा को बहुत मदद करेगा : पूरी तरह से सांस को छोड़ो, जब भी तुम्हें याद आये, एक दिन में अनेक बार—अच्छे-से श्वास को छोड़ो, सारी हवा को बाहर फेंक दो। और श्वास को भीतर मत लो, शरीर को स्वतः लेने दो; तुम सिर्फ सांस को बाहर फेंको और शरीर स्वतः वापस लेगा। सांस को भीतर लेने के लिए किसी तरह के प्रयास की जरूरत नहीं है। सांस लेना सहज व प्राकृतिक होना चाहिए, पर सांस को बाहर फेंकने के लिए पूरा प्रयास करो।

तुम्हारे फेंफड़ों को उतनी हवा नहीं मिल रही है जितनी की जरूरत है, और यह तुम्हारी ऊर्जा को मंद कर देता है। सिर्फ एक तिहाई हवा तुम्हारे फेंफड़ों को मिल रही है, और यह तुम्हारे शरीर और ऊर्जा के बहाव में व्यवधान पैदा कर रहा है। तुम्हारी ऊर्जा पूरी तरह से ठीक है, लेकिन ऊर्जा के प्रवाह में अवरोध है। बस सांस को बाहर फेंकने से मदद मिलेगी, और दो माह में यह सब ठीक हो जायेगा। दो माह तक हर दिन कम से कम सात बार सांस को बाहर छोड़ो या आठ बार भी कर सकती हो, पर इसे कभी भी रात के समय मत करना; सिर्फ सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक। यदि तुम इसे रात को करोगी तो नींद खराब हो जायेगी। क्योंकि नींद के लिए फेंफड़ों को कुछ कॉर्बन डाइआक्साइड की जरूरत होती है। यदि बहुत अधिक ऑक्सीजन होगी तो नींद खराब हो जायेगी।

...एक बार में सात बार, और एक दिन में सात बार, इसका मतलब है कि उनचास बार, बस इतना काफी है। क्योंकि यदि बहुत अधिक ऑक्सीजन भीतर जाती है तो वह भी समस्या पैदा करती है : तब तुम बहुत अधिक उत्तेजित महसूस करोगी, वह भी अच्छा नहीं है। तो उनचास बार एक दिन में, और वह भी सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच—रात में नहीं, कभी भी नहीं—दो माह तक यह करके देखो।

दि सेक्रेड यैस

अंतःप्रज्ञा और बौद्धिकत्ता

एक युवक ओशो से पूछता है : मुझे यह समझ नहीं आ रहा कि मेरी अंतःप्रज्ञा क्या है। मैं शायद इसे भय के साथ मिला देता हूं...।

ओशो : अंतःप्रज्ञा बुद्धि जैसी बात नहीं है। बुद्धि स्पष्ट है, अंतःप्रज्ञा बेबूझ है। यह बहुत मूलरूप से रहस्यात्मक है। अंतःप्रज्ञा बहुत स्पष्ट हो ही नहीं सकती, यह असंभव है। प्रश्न बुद्धि से आ रहा है। बुद्धि अंतःप्रज्ञा को समझना चाहती है, जो कि असंभव है। बुद्धि इसे नहीं समझ सकती; बुद्धि को जाना होगा।

अपनी अंधेरी अंतःप्रज्ञा को समर्पित होओ। हां, शुरुआत में थोड़ा भ्रम लगेगा, भ्रम होगा क्योंकि मन स्पष्टता चाहता है। और यह स्पष्ट हो ही नहीं सकती; यदि यह स्पष्ट हो जाये तो फिर यह अंतःप्रज्ञा नहीं रह जाती। अंतःप्रज्ञा गहन धुंध से गिरी होती है। यह ऐसे ही है जैसे कि बहुत सुबह होता है जब तक सूरज उगा नहीं है, सब कुछ धुंधला और अभी चारों तरफ अंधेरा है। तुम देख पाते हो, लेकिन असल में कुछ भी स्पष्ट नहीं होता।

बुद्धि की इस मांग को गिरा दो! यह मांग विध्वंसक हो सकती है; यह अंतःप्रज्ञा के द्वार बंद कर सकती है जो कि खुल रहे हैं। तुम्हें इसके अंधेरे पक्ष को स्वीकारना होगा, यह स्पष्ट नहीं है। एक बार तुम स्वीकार लेते हो, तो धीरे-धीरे सब कुछ शांत होने लगेगा। भ्रम विदा हो जायेगा।

तुम जानोगे, लेकिन तुम उसी तरह से नहीं जानोगे जैसा कि बुद्धि के जानने का ढंग होता है। यह ऐसी दुनिया नहीं है जहां हमेशा ही दो और दो चार ही होते हैं। नहीं, कभी-कभी पांच हो जाते हैं, कभी तीन हो जाते हैं, कभी वे चार भी हो जाते हैं। अंतःप्रज्ञा का संसार जोड़-बाकी का संसार नहीं है; यह गणित की बात नहीं है, तर्क की बात नहीं। यह तो काव्य की बात है, यहां तो प्रतीक होते हैं, यहां तो सपने होते हैं, दर्शन

का अनुभव होता है, लेकिन हर चीज हमेशा ही रहस्य बनी रहती है।

कुछ बहुत ही सुंदर घट रहा है, लेकिन यदि तुम इसकी कोशिश करोगे कि यह स्पष्ट हो जाये तो यह विदा हो जायेगा। यह तुम्हारी मांग को पूरा नहीं कर सकती। तुम्हारी मांग तुम्हारी बुद्धि से आ रही है, और बुद्धि अंतः प्रज्ञा से निम्न तल की बात है। उच्च निम्न को समझ सकता है, पर निम्न उच्च को नहीं समझ सकता। अंतःप्रज्ञा बुद्धि को समझ सकती है। यह अच्छे-से समझती है कि यह क्या है—कंप्यूटर की तरह, बस इससे अधिक बात नहीं है, यह तो यंत्र मात्र है, उपयोग के लिए अच्छा यंत्र है—लेकिन इससे उपयोग में नहीं आना है। लेकिन यंत्र अंतःप्रज्ञा को समझ नहीं सकता। यह ऐसे ही है : तुम कार चला रहे हो। तुम कार की यांत्रिकता को समझ सकते हो, लेकिन कार चालक को नहीं समझ सकती। यह असंभव है।

इसके बारे में तुम सब भूल जाओ। तुम इस अस्पष्टता का मजा लो, इस काव्य का आंनद लो—इसे गीत कहो, न कि अस्पष्टता। इस मंधम रोशनी का आनंद लो। इस बात का प्रयास मत करो कि यह पूर्णिमा बन जाये। यह नहीं है, यह हो भी नहीं सकती। इसके साथ रहो, इस पर श्रद्धा करो।

और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह हमेशा भी फायदेमंद होगा। इसका अनुसरण करते कभी तुम घाटा भी उठाओगे; कभी-कभी तुम्हें लगेगा कि इसका अनुसरण करते तुम गलत हो गये। मैं इस बात का वादा नहीं कर रहा हूं कि तुम हमेशा ही सही होओगे। लेकिन एक बात तो पक्का कह सकता हूं, पूरे भरोसे के साथ : अंतःप्रज्ञा के साथ गलत हो जाना अधिक अच्छा है बुद्धि के साथ सही होने से। अंतःप्रज्ञा के साथ भटकना बेहतर है बुद्धि के साथ हमेशा सही होने से।

उच्च का अनुसरण करना अपने आप में गुण है। निश्चित ही जब तुम ऊपर की तरफ जाने लगते हो तो वहां से गिर सकते हो, तुम भटक सकते हो। यह कोई राज-मार्ग नहीं है; यह तो जंगल के जीवन की भूलभुलैया है। हो सकता है कि तुम खो जाओ, लेकिन खो जाना सुंदर बात है। खोकर तुम बहुत कुछ सीखोगे, गलत होकर तुम बहुत सीखोगे, गलत जाकर, भटक कर सीखने को मिलेगा। हर भटकाव तुम्हें अपने घर के अधिक से अधिक करीब लायेगा।

स्नैप योर फिंगर्स, स्लैप योर फेस एंड वेक अप

भय हमेशा ही गलत नहीं होता

पश्चिम से आई एक युवती ओशो को बताती है कि उसे लगता है कि वह बहुत भयभीत है। वह किसी संबंध में नहीं है और किसी भी रिश्ते में जाते उसे भय लगता है। उसे अच्छा लगता है जब वह किसी रिश्ते-नाते में नहीं होती।

ओशो : मुझे लगता है कि भय सही है। तुम्हारी ऊर्जा अकेले होने का आनंद ले रही है। तुम्हें अपने भय से संघर्ष नहीं करना चाहिए। भय यह बताता रहा

है कि तुम्हारे लिए सही रास्ता कौन-सा है। इस समय तुम्हारी ऊर्जा अकेले रहना चाहती है, सिर्फ तुम्हारे लिए, इसी कारण भय लग रहा है। भय हमेशा ही गलत नहीं होता है, इसे हमेशा याद रखो।

कुछ भी हमेशा ही गलत नहीं होता है; यह निर्भर करता है। लोगों का यह विचार है कि भय हमेशा गलत होता है—यह सही नहीं है। हां, कभी-कभी यह गलत होता है, कभी गलत नहीं होता है। कुछ भी हमेशा ही सही नहीं होता और हमेशा ही गलत नहीं होता; हर बात संदर्भ पर निर्भर करती है।

अभी तुम्हारा भय पूरी तरह से सही है—यह इतना ही कह रहा है कि 'किसी पचड़े में मत पड़ो,' इसी कारण भय आ रहा है। यह नये का भय नहीं है, कतई नहीं; यह गलत अर्थ निकाल लेना है। यह इसी बात का भय है कि यदि तुम किसी ऊर्जा में उलझ गईं, किसी दूसरे की ऊर्जा में, तो तुम उस स्वयं के केंद्रस्थ होने की अवस्था को खो दोगी जो तुम्हारे भीतर विकसित हो रही है। तुम अधिक केंद्रित हो रही हो, तुम अपनी चेतना में सेटल हो रही हो। तुम अपने अकेले होने में आ रही हो और यदि तुम किसी भी रिश्ते में जाती हो तो वह तुम्हें बाहर खींच लायेगा। तुम्हारी गति भीतर की तरफ है; रिश्ता तुम्हें बाहर ले आयेगा और वह विरोधाभास पैदा करेगा। इसी कारण भय लग रहा है। असल में भय मददगार है—यह बता रहा है कि मूर्ख मत बनो।

अकेली रहो। जब भय चला जाये तो रिश्ते में जाना, तब वह पूरी तरह से सही होगा। यह विदा हो जायेगा—जब इसका समय पूरा हो जायेगा तो चला जायेगा। जब तुम स्थिर हो जाओगी, जब भीतर ऊर्जा ठीक वैसी हो जायेगी जैसी होनी चाहिए, तब तुम बाहर जा सकती हो। पहले तुम्हें स्वयं के भीतर स्थिर होना है, तब बाहर जाना आसान हो जाता है, तब यह अवरोध नहीं होगा। सच तो यह है विपरीत के कारण अंतस को पोषित करेगा। यह अंतस से कुछ समय के लिए अवकाश होगा, पर तुम हमेशा वापस लौट सकती हो। तब यह विध्वंसक नहीं होगा, अलबत्ता सृजनात्मक होगा। तब प्रेम ध्यान में मदद करेगा।

तो बस थोड़ा इंतजार करो। अपने भय की सुनो और उसका दमन मत करो। यह स्वतः विदा हो जायेगा।

दि 99 नेम्स ऑफ नथिंगनेस

और कुछ गंभीर...

एक महात्मा से सेठ चंदूलाल ने पूछा : मेरा इंटरव्यू-लेटर आया है। जाऊं या नहीं महाराज? आपकी क्या राय है?
महात्मा ने कहा : भई, मेरी तो यही राय है कि अगर आपको जाना हो तो जरूर जाएं। अगर नहीं जाना हो तो हरगिज न जाएं।

एक महिला दूसरी महिला से कह रही थी कि बहन, जब मैं बोलते-बोलते थक जाती हूं, तब मेरे पति सेठ चंदूलाल को रेडियो सुनने बैठा देती हूं, ताकि उनकी सुनने की आदत बनी रहे।

एक स्त्री अपनी पड़ोसन से कह रही थी कि तुमने मेरे बेटे को क्यों मारा?
उस स्त्री ने कहा : उसने मुझे मोटी भैंस कहा।
तो पहली स्त्री ने कहा : बहन, तुम्हें मेरे बेटे को मारने के बजाय अपनी खुराक में कमी करनी चाहिए।

एक बच्चे ने अपने पिताजी से पूछा : पिताजी, हम लोग जासूस-चोर का खेल खेल रहे हैं और मैं जासूस हूं। कुछ तरकीब बताएं मैं किसी को पहचान में न आ सकूं। बेटे, बाप ने कहा : साबुन से मुंह धो लो, फिर कोई तुम्हें नहीं पहचान पाएगा।

एक नेताजी लोगों को समझाने लगे : हमारे देश की जनसंख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है। आप लोगों को जानना चाहिए कि किसी न किसी स्थान में एक स्त्री हर मिनट पर एक संतान उत्पन्न कर रही है।
भीड़ को चीर कर एक भोला सा व्यक्ति सामने आया और नेताजी से कहने लगा : महाशय, क्यों न उस स्त्री को तुरंत मार दिया जाए।

एक पुलिस आफिसर एक स्त्री से कह रहा था : देवीजी, हम आपके साहस की प्रशंसा करते हैं। आपने चोर पर हमला किया, वह भी अंधेरे में! और उसकी ऐसी ठुकाई-पिटाई की कि हड्डी-पसली तोड़ डाली!
उस महिला ने कहा : जी, बात ऐसी है कि मुझे मालूम नहीं था कि वह चोर है। अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ा। मैंने तो समझा कि मेरा पति

मुल्ला नसरुद्दीन चंदूलाल से पूछ रहा था : जो व्यक्ति गलती करके मान ले, क्षमा मांग ले, उसे आप क्या कहेंगे?
चंदूलाल ने कहा : अक्लमंद, शरीफ, नैतिक और भला आदमी।
नसरुद्दीन ने कहा : और जो गलती न करने पर भी उसे मान ले, वह कौन है? चंदूलाल ने कहा : विवाहित पुरुष।

सुरेश ने अपने दादाजी सेठ चंदूलाल से कहा कि दादा जी, क्या आपके मुंह में दांत हैं?
चंदूलाल ने कहा : नहीं बेटा, यह बात तू क्यों पूछता है?
सुरेश ने कहा कि कोई और बात नहीं, यह मेरा अखरोट रख लीजिए, जरा मैं खेलने जा रहा हूं।

तीन महिलाएं अपने पति के विषय में चर्चा कर रही थीं। पहली बोली : हमारे विवाह को इतने वर्ष हो गए, पर हम दोनों में आज तक एक बार भी तू-तू, मैं-मैं नहीं हुई।
दूसरी ने लंबी श्वास लेते हुए कहा : काश, मैं भी यही कह सकती!
तीसरी बोली : अरी तू भी कह दे न! आखिर इसने भी कहा ही तो है, कहने में क्या बनता-बिगड़ता है?

अहमक अहमदाबादी से जज ने पूछा : अपनी बीबी को इस प्रकार पीटने के लिए तुम्हें किसने उकसाया?
अहमक अहमदाबादी ने कहा : श्रीमान, उसकी पीठ मेरी ओर थी। छड़ी पास ही मेज पर रखी थी। जूते मैंने निकाल कर रखे थे। भागने के लिए दरवाजा भी खुला था। ऐसा शानदार मौका पिछले दस साल में पहली बार ही मिला था।

अहमक अहमदाबादी की पत्नी उनसे कह रही थी : अजी सुनो, सुनते हो कि नहीं, घर में लड़की जवान हो गई है, तुम्हें तनिक भी परवाह नहीं है इसकी?
अहमक अहमदाबादी ने कहा : इसकी तुमसे ज्यादा चिंता मुझे है, पर ढंग का कोई लड़का भी तो मिले। जो भी मिलता है, गधा ही मिलता है।
पत्नी बोली : अगर मेरे पिता जी भी यही सोचते रहते तो आज तक मैं भी कुंआरी ही बैठी रहती।

एक दिन अहमक अहमदाबादी सुबह-सुबह उदास सिर झुकाए बैठे थे, तभी उनके एक दोस्त ने पूछा : भाई, क्या बात है, क्यों उदास हो?
उन्होंने उत्तर दिया : पहले पंद्रह रुपये किलो घी मिलता था और अब दस रुपये किलो हो गया है।
यह सुन कर दोस्त ने कहा : फिर तो तुम्हें खुश होना चाहिए। एक किलो घी लेने पर पांच रुपये बचेंगे।
उन साहब ने कहा : यही तो दुख है। पहले मैं घी न खाकर पंद्रह रुपये बचाता था, अब सिर्फ दस रुपये बचेंगे।

निर्द्वंद्व जीओ! अभय से जीओ!

परमात्मा ने जो भी दिया है उसके पीछे राज़ होगा, उसके पीछे कुछ छिपी होगी संपदा। इनकार मत करो। तुम परमात्मा की जिस चीज को भी इनकार करोगे, उसके माध्यम से परमात्मा का ही इनकार होगा। इसलिए भक्त कहते हैं: सब स्वीकार कर लो। और अहोभाव से स्वीकार कर लो—उदासी से नहीं, विवशता से नहीं, मजबूरी से नहीं। और स्वीकार के बाद सरलता से जो तुम्हें मिला है उसको गहराओ। उसको गहराते-गहराते ही तुम पाओगे कि जहां केवल कंकड़-पत्थर और धूल-धवांस मालूम होती थी, गड्ढा खोदते-खोदते जल के स्रोत मिल गए हैं, कुएं बन गए हैं।

हर वासना से प्रार्थना तक पहुंचने का उपाय है। खुदाई ठीक से करो। मैं तुम्हें जीवन-स्वीकार का धर्म दे रहा हू

प्रामाणिक मनुष्य होने की कला सिखा रहा हू

बातें बताई गई हैं। अब तक तुम्हें जबर्दस्ती अपने को कुछ बना लेने की चेष्टा सिखाई गई है। मैं तुमसे कह रहा हू

सहजता धर्म होना चाहिए। सहज-योग ही एकमात्र योग होना चाहिए।

और अगर तुमने इस संसार को स्वीकार न किया तो इस संसार के बनाने वाले को कैसे स्वीकार कर सकोगे?

वासना का इनकार नास्तिकता है। वासना का स्वीकार आस्तिकता है।

जीवन को ही स्वीकार न करोगे तो जीवन के पीछे छिपे हुए को कैसे स्वीकार करोगे? घूंघट से ही भाग खड़े होओगे तो घूंघट के पीछे जो चेहरा छिपा है, जो प्यारा छिपा है, उसे उघाड़ कैसे पाओगे? यह प्रकृति उसका घूंघट है। वासना प्रार्थना का घूंघट है। यह सब रूप-रंग उस अरूप और अरंग का घूंघट है। यह सब आकार उस निराकार पर घूंघट है। और बड़े प्यारे हैं। घूंघट भी बड़ा प्यारा है, क्योंकि उसके चेहरे पर है। उसके चेहरे पर होने के कारण सब प्यारा है। इस जगत में ऐसा कुछ है ही नहीं जो प्यारा न हो। और अगर ऐसा कुछ मालूम पड़े कि प्यारा नहीं है तो फिर से सोचना, सोच-सोच कर फिर-फिर सोचना, कहीं तुम अपनी भूल पाओगे।

जो भी परमात्मा ने दिया है—बेशर्त कह रहा हू

है—उसे स्वीकार करो। उसे अंगीकार करो। उसके साथ चलो। और तुम्हारी वासना स्वस्थ रहेगी। और स्वस्थ वासना प्रार्थना तक पहुंचा देती है, अनिवार्यरूपेण पहुंचा देती है।

विकृत वासना—भटक गई। न घर के रहे, न घाट के। धोबी के गधे हो जाते हैं लोग—न घर के, न घाट के। संसार भी गया और निर्वाण का कुछ पता नहीं चलता। इसी मुसीबत में पड़े हुए तुम्हारे साधु-संन्यासियों को मैं देखता हू

निश्चित दया के पात्र हैं। उनके हाथ से सब चला गया। माया भी गई और राम मिले नहीं। माया मिली न राम, दुविधा में दोऊ गए। दुविधा पैदा हो गई उनके मन में —यह चुनना है, यह छोड़ना है, यह पकड़ना है, यह हटाना है। दुविधा पैदा हो गई, द्वंद्व पैदा हो गया।

द्वंद्व वासना को रुग्ण कर देता है।

निर्द्वंद्व जीओ! अभय से जीओ! परमात्मा तुम्हारा रक्षक है, इतना भय क्या? इतना घबड़ाना क्या? उसने दिया है तो ठीक ही दिया होगा। इस आस्था से जीओ। और यही आस्था पहुंचाती है।

का सोवै दिन रैन, प्रवचन 4

ग्रट है। यह सब रूप-

जीने की कला...

दूर तक फैले खेतों के बीच से निकलती हुई सड़क पर चलते हुए एक व्यक्ति ने रास्ते से सटे हुए खेतों में काम करते हुए एक किसान से पूछा, अभी शहर पहुंचने में कितना समय लगेगा, भाई? आप चलते रहिये किसान ने उत्तर दिया। यह भी कोई उत्तर हुआ, उस व्यक्ति ने सोचा और वैसे ही चलता रहा। लगभग आधे घंटे में आप शहर पहुंच जायेंगे पीछे से किसान की आवाज आई। किसान का उत्तर सुन कर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह लौट कर वापस आया और उसने किसान से पूछा, जिस समय मैंने पूछा तब आप ने नहीं बताया कि कितना समय लगेगा, आपने कहा, आप चलते रहिये। लेकिन अब आप कह रहे हैं, आधा घंटा लगेगा, उत्तर देने का यह कौन सा ढंग है? जब तक मैं यह न जान लूं कि आप किस दिशा में चल रहे हैं और किस तरह से चल रहे हैं, आपके प्रश्न का उत्तर कैसे दिया जा सकता था, मैंने देखा कि आप की दिशा तो ठीक है, लेकिन गति का अनुमान लगाये बिना मैं कैसे बताता कि आपको शहर पहुंचने में कितना समय लग सकेगा? किसान ने कहा। किसान की समझदारी से वह यात्री बहुत प्रसन्न हुआ।

हम सभी अपने जीवन में सुख और शांति पाना चाहते हैं, लेकिन कभी हमने सोचा है कि हम किस दिशा में और किस तरह से चल रहे हैं? हर किसी के जीवन में अधूरे सपने हैं, इनको पूरा करने के लिये योजनायें हैं। हम सभी परिश्रम करते हैं, परिश्रम से थक जाने पर विश्राम कर लेते हैं। कभी मनोरंजन के लिये कुछ समय निकाल लेते हैं। हमारे जीवन में कुछ क्षण दुःख के आते हैं और कुछ सुख के और इसी तरह से सभी का जीवन व्यतीत होता रहता है। लेकिन क्या जीवन बस इतना ही है? भोजन, श्रम, मनोरंजन और विश्राम?

लेकिन संसार में ऐसे लोगों की भी कोई कमी नहीं है जो इस तरह के जीवन से संतुष्ट नहीं हैं। कुछ लोगों को लगता है कि जो कार्य वे कर रहे हैं वह उनकी क्षमताओं और आशाओं के अनुरूप नहीं है, इसलिये वे किसी नये अवसर की तलाश करते रहते हैं। जबकि कुछ को यह लगता है कि अगर प्रयास करके वे अपने व्यक्तित्व को थोड़ा-सा बदल सकें तो उनका जीवन और अधिक सुगम हो सकता है।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही व्यक्तित्व विकास के बारे में अनेक लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित होने लगी थीं । इन्ही में से एक स्वेट मार्डेन ने अपनी पुस्तक सुख की साधना का आरम्भ इमर्सन की प्रसिद्ध पुस्तक दि आर्ट ऑफ़ लिविंग में उनके एक वक्तव्य—मैं अपने जीवन के सुखद क्षणों को याद रखता हूं—से किया है। लेकिन क्या सभी लोग सुखद क्षणों को ही याद रख पाते हैं? अगर फ़िल्मी गानों की लोकप्रियता को देखा जाये तो कोई पचास साल पहले मुकेश के दर्द भरे गीत सबसे अधिक सुने जाते थे। और अब भी हर्ष और उल्लास से भरे गीत उतने अधिक नहीं सुने जाते हैं जितने कि उदासी और निराशा दर्शाने वाले गीत। यद्यपि गीतों को नगमा भी कहा जाता है लेकिन क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि गम की भावना को शब्द देने वाले गीत अधिक लोगों को आकर्षित करते हैं।

हम सभी ने शायद कभी न कभी अंडा सेती हुई मुर्गी को देखा होगा। निषेचित अंडों के ऊपर बैठ कर वह अपने शरीर की गर्मी प्रदान करती है जिससे उनके भीतर चूजे का विकास हो सके। अपनी स्मृतियों के अंडों में भरे हुए अनुभवों को मुर्गी की तरह सेने की क्षमता हमारे पास भी है। साथ ही साथ हमारे पास यह चुनाव करने की भी स्वतंत्रता है कि हम कौन से अंडों को सेना चाहते हैं। जिनको भी दुखद अनुभवों से भरे अंडों को सेना अच्छा लगता हो अगर उनके जीवन पर नकारात्मकता हावी होती जा रही है तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। यह गणित तो बहुत साफ़ है जिन भावों को हम बार बार याद करते रहते हैं वे ही हमारी जीवन शैली बन जाते हैं।

क्या नकारात्मक भावों को पोषित करते रहने की इस आदत से मुक्त हुआ जा सकता है? जी हां, बिलकुल हुआ जा सकता है और यह हमारे अपने हाथ में ही है। अपनी भावनाओं पर ध्यान देना ऐसा ही है जैसे कोई किसी गमले में लगे पौधे को नियमित रूप से खाद और पानी देता रहे। हमें भली भांति पता है कि जिस पौधे को पर्याप्त आहार मिलता है उसका दूसरों की तुलना में अधिक विकास होता है। तो क्यों न हम जीवन के आनंदपूर्ण क्षणों का बार बार स्मरण करें। सकारात्मक बातों को, सुखद अनुभवों को अपने अवधान के जल से सींचते रहें। उन घटनाओं को, उन क्षणों को विस्मृत कर दें जो नकारात्मकता और हिंसा से ओत प्रोत थीं। जब कोई वृक्ष अपने किसी पत्ते को जीवन का रस भेजना बंद कर देता है तो वह पत्ता धीरे-धीरे पीला पड़ने लगता है, और एक दिन वृक्ष से अलग होकर गिर पड़ता है। अगर हम भी दुःख और पीड़ा के क्षणों पर ध्यान देना बंद कर सकें तो दुखद क्षणों की ये स्मृतियां भी सूखे पत्तों की तरह झड़ जायेंगी। इससे क्या होगा?

ओशो कहते हैं, 'बस एक परिवर्तन लेकिन इससे बहुत अंतर पड़ जाता है। तुम्हारे साथ जो कुछ भी सुंदर घटित हो रहा है उसे अपनी स्मृति में संकलित करने लगो। और यह प्रत्येक के साथ घटित हो रहा है। और ऐसा कुछ जो सुंदर न हो वह याद रखने योग्य भी नहीं है, स्मृति में संकलित करने योग्य भी नहीं है। जब तुम फूलों और सुगंध से परिपूर्ण हो सकते हो कचरे का बोझ ढोने की क्या जरूरत है? तुम्हें अपने प्रकृति प्रदत्त जीवधारियों वाले मन में थोड़ा सा परिवर्तन करना पड़ेगा।

'ध्यान इसे बहुत सरलता से कर सकता है। चीजों के सुंदर पहलू को देखना, लोगों के सुंदर पक्ष को देखना, घटनाओं के शुभ पक्ष को देखना ध्यान के मूलभूत भागों में से एक है, जिससे तुम सुंदर चीजों से घिरे रहो। सुंदर चीजों से घिरे रहने पर तुम्हारा विकास और सरलता से होता है।'

(बियांड एनलाइटनमेंट)

INTRODUCING

iOSHO®

Everything **OSHO** in One App

OSHO **PLAY**

Collection of Osho Series in English and Hindi organized in 10 categories at your finger tips- Life issues, Eastern and Western mystics, Zen, Tantra and more.

OSHO **iMEDITATE**

Instructions and music for all 16 OSHO active meditations, plus the daily evening meeting available to you anytime anywhere.

OSHO **TV**

A library of master classes. OSHO's unique vision on vast variety of topics no one dared to tell you growing up - Sex, Love, Money, Priests, Politics and more

OSHO **RADIO**

Make your mornings or morning commute a Meditation. Osho talks streaming 24/7 in English and Hindi.

OSHO **TAROT**

The world's most popular Zen based reflection of the here and now.

Get your Free Access Today

Download on Play Store | Download on App Store | Get access on Osho.com

संतोष भारती

फरवरी 2022

मेष (मार्च 21-अप्रैल 20)

सुख भी आता है और न चाहते हुए भी दुख भी आ जाता है। असल में चाहत तो हमेशा सुख की ही होती है, लेकिन आ दुख जाता है। थोड़ा अजीब है जो चाहते हैं वह नहीं आता, जो नहीं चाहते वह आता। निश्चित ही इसका कारण बेहोशी है, अज्ञानता है, नामसझी है। बस चाहने मात्र से बात बन जाती तो बन ही जाती, अब तक नहीं बनी मतलब सीधा-सा यह है कि बात चाहने की नहीं है, जीवन जीने की है। इसके लिए निश्चित ही ओशो संदेश व उनके बताये ध्यान प्रयोग बेहद कारगर हैं। अच्छा तो यही होगा कि अब चाहें नहीं, कुछ करें और करना सिर्फ इतना भर है कि ओशो के बताये ध्यान प्रयोगों में से कोई एक नियमित जारी रखें। यदि ऐसा होता है तो तय मानकर चलिये कि दुख की चाह भी रखेंगे तब भी सुख ही आयेगा।

वृषभ (अप्रैल 21-मई 21)

सुख और दुख ही जीवन की सफलता या असफलता की कसौटी हो तो फिर सृजन, भावनाएं, आत्मीयता, अपनापन, सुरक्षा-सुविधा जैसी अनेक चीजें पीछे छूट जाती हैं। यह भी हो सकता है कि किसी बात पर समझौता करके तात्कालिक सुख तो ले लें, लेकिन वही सुख कालांतर में अभिव्यक्ति की आजादी पर चोट के होते दुख बन जाये। और सृजन हेतु किया गया त्याग हो सकता है कि दुख लगे लेकिन कालांतर में सृजन परम सुख ले आता है। इस बात को देखते यह कहा जा सकता है कि हाल ही में जो बातें आपके मन को दुखद लग रही हैं वही बातें आने वाले समय आपको परम सुख देने वाली साबित होने वाली हैं। और इसी के साथ आपको यह भी सीख मिलने वाली है कि तात्कालिक सुख या दुख आत्यंतिक रूप से दुख या सुख ही हो यह मानना सही नहीं होगा। माह के अंत होते आप ऐसे ही सुख से सराबोर होने वाले हैं।

मिथुन (मई 22-जून 21)

परिपाटियां, रीति-रीवाज, मान्यताएं जीवन के हर तल पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। अब यह मानना कि जीवन में सुख भी आता है, दुख भी आता है इतना गहरा चला गया है कि हर किसी ने नियम की तरह इसे स्वीकार लिया है कि जीवन ऐसा ही चलता है। जबकि ओशो सतत स्मरण करवाते हैं कि जीवन उत्सव का एक सिलसिला है। और जीवन को ऐसा उत्सव बनाने के लिए ओशो सहज, सरल, सुगम रास्ते भी बताते हैं जिन पर चल कर जीवन का आनंद लिया जा सकता है और आज की तारीख में दुनिया में करोड़ों-करोड़ों लोग इस आनंद का अनुभव भी कर रहे हैं। अब यदि यह सच है तो फिर आपके जीवन में उत्सव का आगमन स्वतः होना ही चाहिए और इस माह हो भी रहा है।

कर्क (जून 22-जुलाई 22)

एक लंबा दुख का अंतराल हर किसी को थका देता है। लेकिन यह भी सच है कि दुख भी हमेशा-हमेशा नहीं रहता। यह माह आपके जीवन में सुख का एक नया अध्याय लेकर आ रहा है। आप स्वयं देखेंगे कि हर प्रयास के बावजूद दुख टस से मस नहीं हुआ और अब बिना किसी प्रयास के ही सुख ही सुख आ रहा है। असल में सीखने वाली बात ही यही है कि सुख भी स्वतः आता है और दुख भी स्वतः आता है और यदि थोड़ा-सा गहराई से देखें तो सुख व दुख मन की व्याख्याएं हैं। अंततः न तो कोई सुख है न ही दुख। और बड़ी से बड़ी बात इस समय यही हो रही है कि आप इस रहस्य को ठीक से समझ पा रहे हैं।

सिंह (जुलाई 23-अगस्त 23)

सुख की अपनी सीख है तो दुख की भी अपनी सीख है, तुलना ही करें तो निश्चित ही दुख अधिक सिखाकर जाता है, परिपक्व करके जाता है, प्रौढ़ करके जाता है और जितना सीखते हैं उतना ही दुख कम से कम होता जाता है—असल में कसौटी ही यही है कि जितना सीखे उतना ही दुख कम हुआ। और आप यदि अपने आपको देखें तो पाते हैं कि आप सीख भी रहे हैं और दुख कम से कम भी होता जा रहा है। इतना होने पर भी ओशो जब आनंद की बात करते हैं, उत्सव की बात करते हैं तो वह जीवन का अधिक उच्च स्तर है। दुख का न होना पर्याप्त नहीं है, अधिक से अधिक आनंदित होना बात बुनियादी है। जितना आप ओशो संदेश को सुनेंगे व नियमित ध्यान करेंगे उतना ही जीवन आनंद व उत्सव से भरता चला जायेगा।

कन्या (अगस्त 24-सितंबर 23)

सिर्फ सुख ही सुख तो वह भी रूखा-सुखा हो जायेगा व दुख ही दुख जीवन को अवसाद से भर देगा। असल में देखा जाये तो सुख का अपना स्वाद है तो दुख का भी अपना स्वाद है और जब इन अनुभवों को इस तरह से लिया जाने लगे तो निश्चित मानकर चलिये कि शीघ्र ही जीवन अधिक रोचक व रंगीन हो जाता है। मन जब दुख से भागता है व हर बार उसकी पूरी तरह से नकारात्मक तस्वीर बनाता है तो दुख अधिक मुश्किल बन जाता है जितना वह होता ही नहीं है।

समय है जब आप हर अनुभव को इस नजरिये से देखना शुरू करें और शीघ्र ही आप पायेंगे कि असल में न तो कुछ सुख जैसा है न ही कुछ दुख जैसा—सब मन की अपनी बनाई परिभाषाएं हैं। इतना भर हो जाता है तो साक्षी का अनुभव आपको अतिरिक्त आनंद से भर देने वाला साबित होने वाला है।

तुला (सितंबर 24-अक्टूबर 23)

यदि जीवन यंत्रवत चलता रहा तो इसके कोई मायने नहीं कि सुख आता है कि दुख आता है। अब सोये-सोये व्यक्ति को पता ही क्या चलता है कि क्या तो सुख आया और क्या दुख आया। पर हां, जागृत व्यक्ति, होश से भरा व्यक्ति, सजग व्यक्ति के जीवन में अंततः कुछ भी आये—सुख या दुख, जीवन रूपांतरण का अवसर ही लेकर आता है। तब मानना होगा कि सिवाय सुख के कुछ भी नहीं आता।

इस संदर्भ में यदि आप अपने वर्तमान के अनुभव लें तो पता चलता है कि जो कुछ भी जीवन में अनुभव बनकर आया है आपको अधिक प्रौढ़ व परिपक्व करके ही गया है। तो मानना तो यही होगा कि अब सिवाय सुख के कुछ भी नहीं आ रहा है। और यदि होश की दिशा में प्रगति जारी रही तो आगे बहुत कुछ शुभ ही शुभ की शृंखला चलती रहेगी।

वृश्चिक (अक्टूबर 24-नवंबर 22)

यदि मन किन्हीं बातों से सम्मोहित हो जाये तो मन कभी भी अपनी बंधी-बंधाई परिभाषाओं से बाहर ही नहीं आ पाता। अब सुख और दुख भी इसी तरह से हर किसी को अपनी-अपनी परिभाषा के अनुसार अनुभव देते चले जाते हैं। जबकि होश पूर्वक, सजगता से यदि इन अनुभवों का जीवन के लिए उपयोग किया जाये तो सुख भी बहुत कुछ देकर जाता है तो दुख भी बहुत कुछ दे कर जाता है और दिन पर दिन जीवन अधिक से अधिक केंद्रित, संतुलित व सुंदर होता जाता है। यह बात बहुत अधिक शुभ है कि आप इस बारे में गहनता से विचार कर रहे हैं, चिंतन कर रहे हैं और स्वयं पर काम भी कर रहे हैं और इसी का परिणाम है कि सुख व दुख मिलकर आपके जीवन को अधिक से अधिक आनंद व उत्सव से भरते चले जा रहे हैं।

धनु (नवंबर 23-दिसंबर 23)

यदि आप यही सोचते रहे कि जीवन में दुख भी आता है और सुख भी आता है और जीवन बस यूं ही चलता रहता है तो तय मानकर चलिये कि जैसा अब तक जीवन में कुछ सार्थक नहीं हुआ है आगे भी नहीं होगा। जीवन का हर अनुभव परिपक्वता व प्रौढ़ता लाता है। अच्छी बात यह है कि आप इस प्रौढ़ता की तरफ अग्रसर हो रहे हैं और स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि जीवन हर दिन नित-नये अनुभव ला रहा है जो बाहर से तो सुख या दुख की तरह ही लगते हैं लेकिन आपके अंतस में लगातार बदलाव लाते रहते हैं। माह अंत तक आप एक अनूठे ही अनुभव से गुजरने वाले हैं, तब आप अपने अनुभव से महसूस कर पायेंगे कि सुख व दुख तो बाह्य परिधि पर आती-जाती छायाएं हैं, अंतस में तो आनंद की सतत शृंखला अविरल प्रवाहित हो ही रही है।

मकर (दिसंबर 24-जनवरी 20)

यदि यही मन बन जायेगा कि अब ऐसा ही सब कुछ चलना है कभी सुख आयेगा, कभी दुख आयेगा तो तय मानकर चलिये कि रूपांतरण की संभावनाएं भी संकट में पड़ जाती हैं और बस होता यह है कि जैसे-तैसे जीवन को गुजार लिया जाता है। अच्छी बात यह है कि लंबे समय तक आप इस मानसिकता के साथ जीते रहे हैं लेकिन अब संकल्प की शक्ति आपको ललकार रही है कि जीवन को यूं ही नहीं बिताया जा सकता। और इसी के साथ आप स्वयं देख रहे हैं कि चाहे सुख आये या दुख आये आप हर अनुभव के साथ अधिक से अधिक सजग होते जा रहे हैं और यही बात आपके जीवन को नित-नई ऊंचाईयों तक ले जा रही है। यदि यही ऊर्जा इसी दिशा में यूं ही लगती रही तो तय मानकर चलिये कि बहुत कुछ शुभ की संभावनाएं आने वाले दिनों आती ही जाने वाली हैं।

कुंभ (जनवरी 21-फरवरी 19)

आप एक अच्छे-भले इंसान हैं। जीवन को जैसा है वैसा ही आनंद पूर्वक जीते चले जाते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि आप सामान्यतया किसी भी अनुभव के प्रति न तो लगाव रखते हैं न ही शिकायत से भरते हैं। चाहे सुख आये या दुख आये आपका जीवन वैसा ही चलता रहता है जैसा कि चलता रहा है। इसी को सम-भाव कहते हैं। अब समय है जब आप अपने साक्षीभाव के प्रति अधिक से अधिक सजग होते चले जायें। इससे आप एक नये ही अनुभव से गुजरने वाले व्यक्ति बनकर उभरेंगे जो आप स्वयं को नये आत्म-विश्वास से भर देगा। और यही आत्म-विश्वास माह अंत तक आपके जीवन को इतनी सारी खुशियां देने वाला है कि आप स्वयं भी विश्वास नहीं कर पायेंगे।

मीन (फरवरी 20-मार्च 20)

सुख भी जीवन में स्वतः आ जाता है और दुख भी स्वतः आता जाता है। और आपने इस बात को इतनी गहराई से स्वीकार लिया है कि अब दोनों ही अनुभव आपको अधिक प्रभावित नहीं करते हैं और इससे एक तरह की उदासीनता आती जा रही है। समय है जब आप अपने हर अनुभव को अधिक सजगता से व जागरूकता से जीकर देखें। सुख का भी भरपूर आनंद लें व दुख में भी खूब दुखी हो जायें। ये अतिरेक के अनुभव आपको इन भावनाओं के प्रति अधिक से अधिक सजग करेंगे और इसी सजगता से आप इन दोनों ही अनुभवों के साक्षी होते चले जायेंगे और उदासीनता व साक्षी में गुणात्मक फर्क है, यही फर्क आपके जीवन को नई दिशा देने वाला साबित होने वाला है।

ओशो का संदेश

यह मैं तुमसे कहता हूं, जो नहीं मांगता, उसे मिलता है, जो मांगता है, वह चूक जाता है।

अंजुरी भर कर पी लो

शरद चांदनी
बरसी
अंजुरी भर कर पी लो
ऊंघ रहे हैं तारे
सिहरी सरसी
ओ प्रिय कुमुद ताकते
अनझिप
क्षण में
तुम भी जी लो।

देखते हो, चांद-तारे अभी जी रहे हैं। फूल अभी खिल रहे हैं। नदियां अभी बह रही हैं। सागर अभी उत्ताल तरंगों से भरे हैं। हवाएं अभी गुजर रही हैं वृक्षों से। वृक्ष अभी हरे हैं।

न तो वृक्षों को कल की कोई याद है, न आने वाले कल की कोई चिंता है। न चांद-तारों को कल का पता है, न आने वाले कल का कोई पता है।

ऐसे ही तुम भी जी सकते हो।

और ऐसे जीने का नाम ही धर्म है, ध्यान है।

ओशो, *बिरहिनी मंदिर दियना बार*

मेरे प्रिय,
प्रेम।
प्रेम है बेशर्त दान।
बेशर्त अर्थात अपेक्षा रहित।
जहां अपेक्षा है वहीं प्रेम विषाक्त है।
और विषाक्त प्रेम घृणा से भी बदतर हो जाता है।
फिर प्रेम संबंध भी नहीं है।
उसमें संबंधों के फल लगें यह अलग बात है।
प्रेम मूलतः मनोदशा है।
जैसे दिया जले अंधकार में, ऐसे ही हृदय में प्रेम जलता है।
किसी के लिए नहीं–जो भी निकट है उसी के लिए।
जैसे फूल खिले ऐसे ही प्रेम खिलता है।
स्वयं के ही लिए–स्वांतः सुखाय।
पर जो भी आए उसे सुगंध तो मिलती ही है।
बेशर्त।
अपेक्षा-रहित।
स्वयं के आधिक्य से।
और कोई पास न आए तो भी तो दिया जलता है एकांत में–तो भी तो फूल खिलता है निर्जन में।
ऐसे जलो–ऐसे ही खिलो।